संक्रामक रोग तथा उनका निवारण

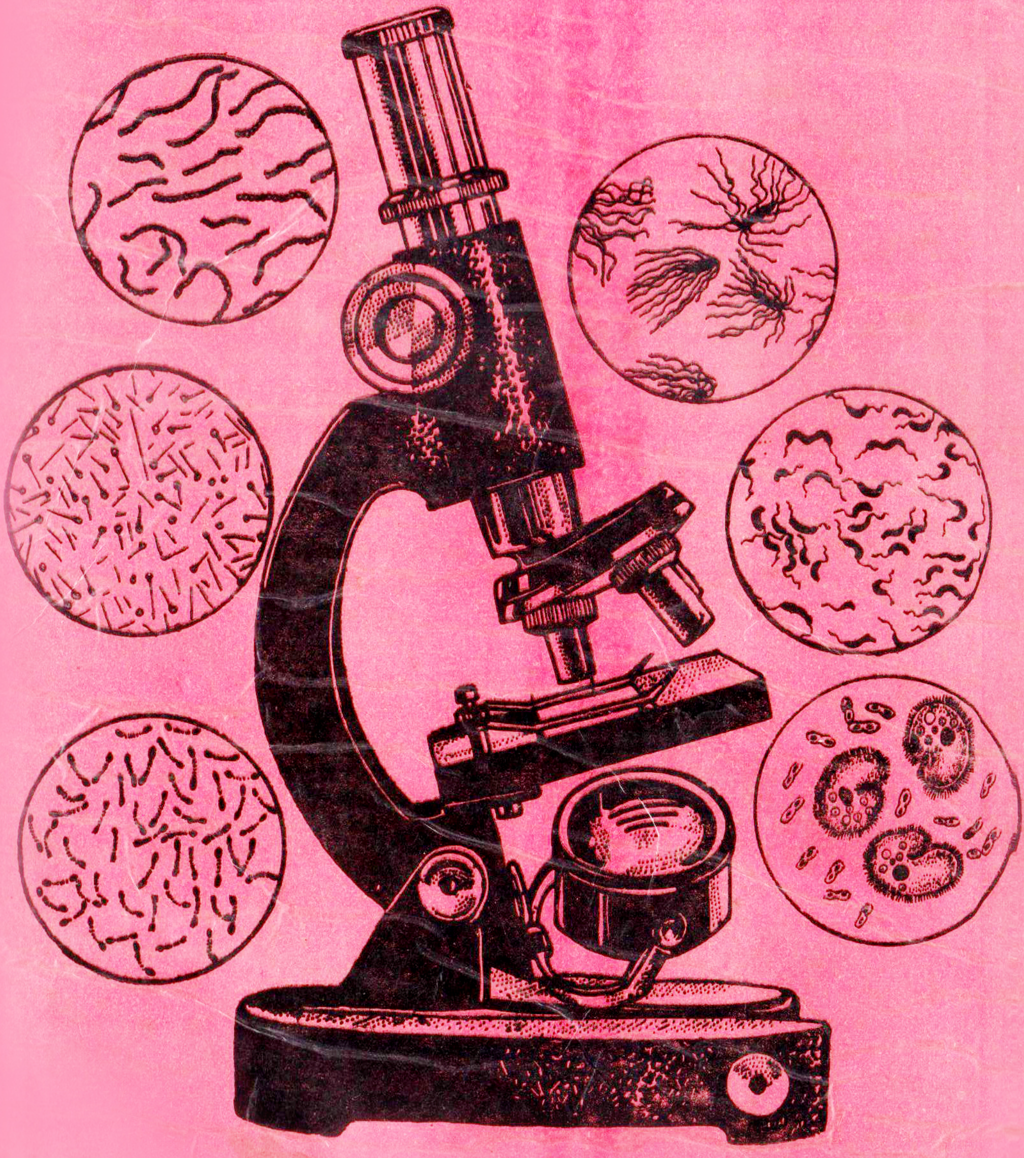

संक्रामक रोग तथा उनका निवारण

(केन्द्र सरकार का प्रौढ़ - शिक्षा - साहित्य पुरस्कार प्राप्त रचना)

लेखक :

'कलिव' गोपालकृष्णन

हिन्दी में अनुवाद :

श्रीमती शांता शर्मा

प्रगति रिसर्च एवं कम्यूनिकेशन सेंटर

नं. १५, ३- स्ट्रीट

परमेश्वरी नगर, अडैयार

मद्रास-६०००२०

PUBLICATION DATA

1.	Title	:	Sankramak Rog Thatha Nivaran
2.	Tamil Original	:	Kalvi Gopalakrishnan
3.	Hindi Translation	:	Smt. Shanta Sharma
4.	Art Work	:	Kalvi Gopalakrishnan
5.	Edition	:	Revised and enlarged April 1987
6.	Copyright	:	© Author
7.	Copies	:	Two Thousands
8.	Size of Book	:	21.25 cm × 14.25 cm
9.	Type, for text	:	14 Pt. Hindi Roman
10.	Paper	:	White Creamwove 60 grams.
11.	Binding	:	Section stitching with white card board wrapper.
12.	Price	:	14-00
13.	Publishers	:	Pragati Research & Communication Center No. 15, 3rd Street, Parameswari Nagar, Adayar, Madras-600 020.
14.	Printers	:	D.M.E. Printers 12, Kailaya Chetty St., Ms-21
15.	Topic	:	Communicable diseases, their symptoms and prevention.
16.	Credits	:	Financial aid has been given by the Department of Science and Technology, Government of India, for publishing the Hindi version, from the original in Tamil.

दो–शब्द

कथा-वार्ता एवं औपन्यासिक शैली में वैज्ञानिक विषयों को प्रस्तुत करने की रोचक एवं हृदय ग्राही विद्या के प्रख्यात लेखक श्री 'कल्वी' गोपालकृष्णन की स्वास्थ्य विज्ञान के अंतर्गत संक्रामक रोगों से संबंधित हिन्दी भाषा में दो पाण्डुलिपियों को देखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैंने इन्हें आद्योपान्त पढ़ा है—एक बार नहीं एक से अधिक बार। इसलिए कि मैं इन्हें बार बार पढ़ने का मोह ही संवरण नहीं कर सका हूँ। जब-जब पढ़ने बैठा हूं, इनके गुम्फित कथानकों, चुटीले संवादों तथा विविधता भरे सजीव दृश्यों ने मुझे एक-दम पकड़ लिया है; और मैं उन क्षणों में यह भूल ही गया हूँ कि मैं स्वास्थ्य विज्ञान पर कोई पुस्तक पढ़ रहा हूं अथवा बोलते हुए किसी चलचित्र (फिल्म) को ही देख रहा हूँ।

ऐसी सरल, रोचक व मनोहारी शैली में प्रस्तुत इन कृतियों के लिए मैं इनके कृतिकार श्री 'कल्वी' गोपालकृष्णन को हार्दिक बधाई देता हूं। उन्होंने इनको हिन्दी में रूपान्तरित कराकर तो और भी स्तुत्य कार्य किया है। रूपान्तर भी बड़ा ही मौलिक लेखन बन पड़ा है, यह भी बड़ी प्रसन्नता की बात है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस प्रकाशन से हिन्दी भाषा के अनेकानेक पाठक तो लाभान्वित होंगे ही, ग्रामीण अंचलों में नवसारण प्रौढ़ पुरुष एवं महिलाओं के मध्य स्वास्थ्य-सेवाएं प्रदान करने वाले कार्यकर्ता तो बहुत ही अधिक लाभान्वित होंगे। नव पाठक-वर्ग (न्यू रीडिंग पब्लिक) के लिए समर्पित लेखकों को भी इससे गहन प्रेरणा प्राप्त होगी एवं औपन्यासिक विद्या में विज्ञान-विषयों को प्रस्तुत करने की उन्हें एक ठोस दिशा मिलेगी। समस्त हिन्दी-जगत में-तथा स्वास्थ्य–सेवकों में इन अनूठे प्रकाशनों का हार्दिक स्वागत होगा, इस मंगल कामना के साथ—

ए–४६, आलोक नगर,
आगरा–१० (उ.प्र.)
१२–४–८७

द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी
भूतपूर्व निर्देशक, साक्षरता निकेतन
(लिट्रेसी हाउस), लखनऊ (उ.प्र.)

संक्रामक रोग तथा उनका निवारण

१. चित्रपट के साथ व्याख्यान

मुनादी गाँव की चौमुहानी पर खड़े–खड़े डुग्गी पीटने लगा तो वहाँ भारी भीड़ जमा हो गई। डुग्गी से ढम्! ढम्! ढम्!'

की आवाज निकल रही थी। अंतिम 'ढम्' के साथ मुनादी ने एक कागज निकालकर पढ़ना शुरु किया :

"किसनपुर गाँव के निवासियों की जानकारी के लिए ऐलान किया जाता है कि आज शाम सात बजे मन्दिर के सामने के मैदान में नामी, लोकप्रसिद्ध वैद्य कालूचंदजी छूतकी बीमारियाँ और उनके निवारण

के बारे में छायाचित्र दिखाकर समझाने वाले हैं। हमारे गाँव के सरपंच चौधरी साहब का अनुरोध है कि सब लोग पधारें और लाभ उठाएँ।"

इन शब्दों के साथ ही घोषणा समाप्त हुई और मुनादी 'ढम्, ढम्' की आवाज गुँजाते हुये और किसी तिमुहानी या चौमुहानी की ओर बढ़ा।

लोगों के बीच उस दिन शाम तक वही चर्चा चल रही थी। 'चल चित्र दिखाया जायगा' इसी उत्साह में लोगों ने जल्दी-जल्दी काम किया और ७ बजे के पहले ही मैदान जन-समूह से भर गया। चौधरी साहब भी मंच पर बैठ गए। उसके पहले ही वैद्यजी ने चित्र दिखाने के लिये परदा तानकर सारी तैयारी कर रखी थी। जैसे ही चौधरी साहब ने वैद्यजी के साथ मंच पर खड़े होकर हाथ जोडे वैसे ही भीड़ में भी सन्नाटा छा गया। उन्होंने पहले वैद्यजी का परिचय कराया उस के बाद वैद्यजी से गाँव के पुजारी, अध्यापक ओझाजी आदि मुख्य लोगों का परिचय कराया।

इतने में सिपाही बिरजू सिंह भीड़ के बीच उठ खड़ा हुआ और चौधरी के सामने हाथ जोडने लगा। तुरंत चौधरी साहब ने कहा- "अरे हाँ, मैं यह बताना भूल ही गया कि हमारे गाँव का वीर पुरुष है यह बिरजू सिंह दोनों महायुद्धों में बड़ी वीरता के साथ यह मोर्चे पर ड़टा रहा और इसने कई पुरस्कार प्राप्त कर गाँव का नाम रोशन किया। दूसरे महायुद्ध में गोली खाकर अपने पैर से हाथ धोने पर भी वह बड़ी वीरता के साथ युद्ध करता रहा। इसलिये इसे महावीर चक्र मिला है।"

फिर उन्होंने गाँव की जनता को संबोधित कर कहना शुरू किया—"मेरे भाइयो! बच्चो! बुजुर्गो! माताओ और बहनो! आज वैद्यजी हमारे बीच पंधारे हैं। यह बड़ी खुशी की बात है। आप विलायत में दौरा कर आये हैं और अपना बहुमूल्य समय हमारे लिये

अर्पण कर कुछ सलाह देनेवाले हैं। हमारा गाँव किशनपुर है। उस किशन भगवान की कृपा से हम लोग सब कुशल–मंगल पूर्वक हैं। और अगर वैद्यजी की बातों पर चलेंगे तो कोई भी रोग हमारे पास तक नहीं फटकेगा। हम चिर काल तक जीकर अपनी संतान का फलना फूलना देखकर खुश रहेंगे। मेरे ख्याल से आप सभी लोग मुझसे अवश्य सहमत होंगे और वैद्यजी जो कुछ भी कहेंगे उसे ध्यान से सुनेंगे। वे हमारे लिए कई फायदेमंद बातें कहने आए हैं। धन्यवाद।

वहाँ जमा हुए सब लोग हर्ष–ध्वनि और करतालों से अपनी स्वीकृति प्रकट करने लगे। उसके बाद वैद्यजी अपने आसन से उठे और उन्होंने भाषण देना आरंभ किया।

२. छूत की बीमारियाँ

'भाइयो, हमें दुख देनेवाले और सतानेवाले रोग अधिकतर छूत के रोग होते हैं। छूत की बीमारी को पढ़े–लिखे लोग 'संक्रामक रोग' कहा करते हैं। यह बीमारी जब एक व्यक्ति को लगती है तब वह उस व्यक्ति तक ही सीमित नहीं रहती। जिस तेजी से आग फैलती है उसी तेजी से वह एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे और उससे चौथे को लग जाती है। मान लीजिये किसी गाँव में किसी एक को यह बीमारी लगी तो समझ लीजिये कि सारा गाँव ही जल्दी बीमार हो गया। इसी कारण इसे छूत की बीमारी कहते हैं। चेचक, तपेदिक, क्षय, हैजा, सर्दी–बुखार, आँवदस्त, पीलिया आदि भयानक छूत के ही रोग हैं।'

वैद्यजी ने आगे कहा–'क्या आप लोगों को मालूम है कि इन रोगों को उत्पन्न करनेवाले कौन हैं?'

कुछ लोगों ने 'हाँ' में और कुछ ने 'नहीं' में सिर हिलाया।

वैद्यजी ने कहा–'रोग उत्पन्न करनेवाले कुछ खास कीटाणु होते हैं। उन्हें हम देख नहीं सकते।'

मंदिर के पूजारी को यह बात जँची नहीं। वे खड़े होकर पूछने लगे—"वैद्यजी, क्या चेचक भी कीटाणु के कारण ही उत्पन्न होती है ?

वैद्यजी ने दृढ़ता पूर्वक कहा—"पुजारी जी, चेचक के कई प्रकार हैं और उन सारे रोगों के मूल कारण कीटाणु ही हैं।

३. शीतलाजी का क्रोध

पुजारीजी इसे हजम नहीं कर पाए। उन्होंने फिट शंका भरी अवाज में पूछा–"वैद्यजी, मेरी बातों का बुरा न मानें। हमारे बड़े लोग पूर्वज और बुजुर्ग यही कहते और मानते आ रहे हैं कि यदि शीतलांजी रुठ जाती हैं या उनके प्रति हमारी कोई गलती हो जाती है तब देवीजी चेचक के रूप में शरीर पर निकल आती हैं। लेकिन आप आज कह रहे हैं कि कीटाणुओं के कारण ही यह होती हैं, देवीजी का इसमें कोई हाथ ही नहीं। तब क्या हमारे बडों का विश्वास निराधार था ?"

वैद्यजी ने पुजारी जी की शंका का समाधान इस प्रकार किया–"पुजारीजी, मैं यह नहीं कहता हूँ कि आप शीतलाजी की पूजा न कीजिये, ठंडी चीजे, चूडा आदि न चढ़ाइए। मेरा मतलब यही है कि अगर हम पूजा न चढ़ाएँगे तो वह कुपित होकर अपनी संतान को हानि नहीं पहुँचाती है और न ही पहुँचायेगी। शीतलाजी हम सब की माँ हैं। कहीं माँ अपने बच्चों के अपराधों के लिये इतनी बड़ी सजा देगी ? आप सोचकर देखिये न ? इतनी भयंकर बीमारी से यातना देकर चेहरे की सुंदरता छीनकर कभी-कभी आँखों की रोशनी तक छीन कर उन्हें सतायेगी ? किसी-किसी की इस बीमारी के कारण जान तक चली जाती है। पुजारी जी, कोई माँ क्या अपने बच्चे की मौत

चाहेगी ? या कारण बनेगी ? क्या आपने सुना नहीं है–'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ।' बेटा कपूत हो सकता है पर माँ कभी बुरी नहीं हो सकती । माँ गुस्सा करेगी तो भी इस हद तक नहीं पहुँचेगी । आप ही स्वयं सोचकर देखिये ।"

वैद्यजी भावुक हो गये और पुजारी जी निरुत्तर ।

जरा रुककर वैद्यजी आगे कहने लगे—"शीतलाजी हमारी माँ हैं। वह कभी हमारी दुर्गति नहीं करेंगी। यदि हमें कोई बीमारी हो गयी तो उसे दूर करने का उपाय सोचेगी। वह स्वयं हम पर बीमारी नहीं लादेंगी। इसके बारे में सब को सोचना जरूरी है।

उन्होंने कहा—"हमारे पूर्वज ही क्यों, संसार भरकें सारे लोग जब छूत की बीमारी लग जाय, या कोई मामूली ही बीमारी हो जाय, तो कारण न मालूम होने से बहुत परेशान होते थे। इसलिये उनके बारे में भ्रमपूर्ण विचार अपनाकर औरों को भी अंधकार में रखते थे। पिछली शताब्दी तक यही धारण बनी रही कि भूत-प्रेत, देवी – देवता के कारण ही बीमारियाँ फैलती हैं। इनको दूर करने के लिये, इनको शांत करने के लिये पूजा चढ़ाना, शांति करना आदि का स्वांग होना था।

सोलहवीं सदी में 'लयूवेन हूक'[1] नामक वैज्ञानिक ने सूक्ष्म दर्शक-यंत्र की सहायता से 'कीटाणुओं'[2] का अस्तित्व खोज निकाला। लेकिन उन्हें यह पता नहीं चला कि वे ही कीटाणु व्याधियों को उत्पन्न करते हैं। पिछली सदी तक किसी को यह बात मालूम नहीं थी कि रोगों का मूल कारण कीटाणु हैं। पिछली सदी में पता चला कि कुछ खास बीसारियाँ कुछ खास कीटाणुओं से उत्पन्न होती हैं। उसके बाद ही उस क्षेत्र में खोज और छान-बीन का कार्य शुरू हुआ। इसका परिणाम अच्छा ही हुआ। वैज्ञानिकों ने खोज निकाला कि किस बीमारी के पीछे किस कीटाणु का हाथ है और मान लीजिए वह बीमारी किसी को लग गई तो उसे फैलने से कैसे रोका जाय। यह तो हुई बात कि बीमारी होने के बाद क्या करना चाहिये। पर उन्होंने उसके बाद इसके लिये भी रास्ता ढूंढ़ा कि बीमारी को आने से कैसे रोकें। उन वैज्ञानिकों ने छान-बीन और

---

1. लियूवेन हूक LEEUWEN HOOK (Lu-ven-Hook) 1632–1732

2. कीटाणु MICROBE

खोज अनुसंधान से जिन सत्यों पर प्रकाश डाला उन्हीं सत्यों को मैं आज आपके सामने रखने जा रहा हूँ।"

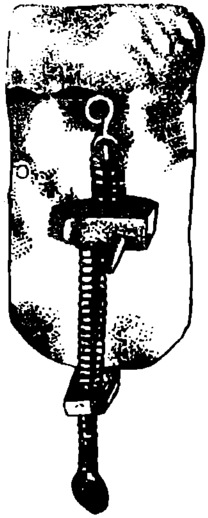

हमारे बीच रोग फैलाने वाले कीटाणु किस प्रकार के होते हैं? वे कैसे रोग फैलाते हैं? मैं अब आपको जो चित्र दिखाने जा रहा हूँ उससे ये सब बातें स्पष्ट रूप से समझ में आयेंगी। आशा ही नहीं, अटल विश्वास भी है कि उसके बाद आप सब लोग इस सत्य को समझ जाऐंगे कि चेचक आदि रोग देवी के प्रकोप से नहीं कीटाणुओं की कृपा से ही उत्पन्न होते हैं। मेरे ख्याल से पुजारीजीं भी इस बात से सहमत हो जायेंगे।

४. कंबली कीड़ा! वह देखो कीड़ा!

"परदे पर देखिये।" वैद्यजी ने लोगों का ध्यान परदे की ओर आकृष्ट किया। सब लोग उत्सुकता से परदे को देखने लगे। उसपर उजाला फैलने लगा। उस उजाले के बीच कई छोटे छोटे धब्बे जहाँ–तहाँ दिखाई पड़े, धीरे—धीरे वे फैलने लगे। परदे पर जहाँ तहाँ वे ही वे नजर आ रहे थे।

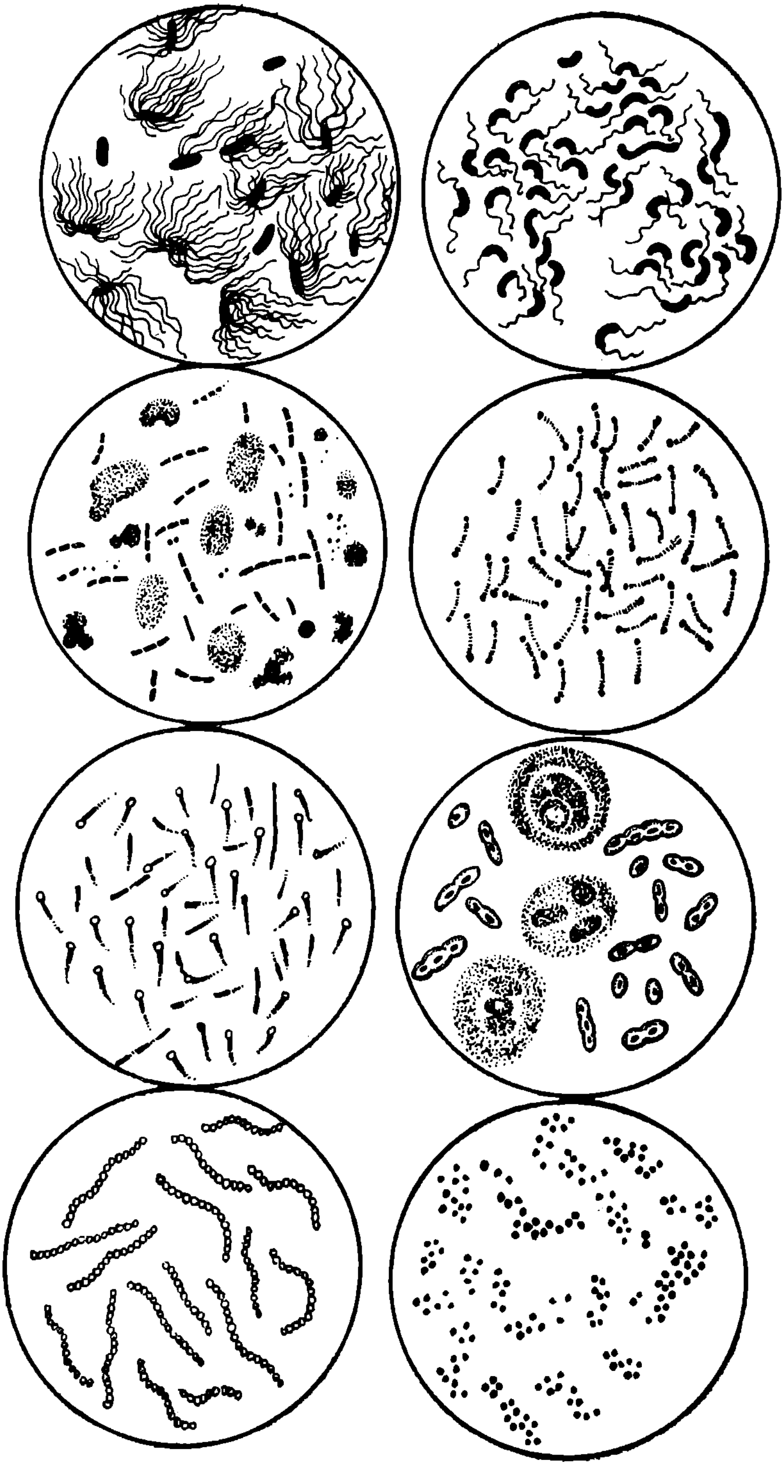

चित्र बदला । वे छोटे धब्बे मिलकर मणियों (पोत) से बनी माला के समान दिखाई देने लगे । फिर अंगूर के गुच्छे के समान लगने लगे । परदे भर में येही चित्र दिखाई दे रहे थे । लोग जब ध्यान से देखने लगे तब पता चला कि इनके पास हूक जैसे आकारवाले कुछ मुड़मुड़कर धीरे—धीरे रेंगने लगे । फिर......यह क्या ? गोल-गोल घुमाकर मोड़कर, रखे हुये पतले तार के समान लंबे गोलों के समान तिनकों के समान, कई रूप आकारवाले चित्र एक के बाद एक परदे पर इधर-उधर दीखने लगे । लंबी गोलाई के आकार वालों पर कुछ रोएँ भी थे । किसी किसी पर तो कंबली कीडे के समान पूरे शरीर पर रोएँ दिखाई दिये । ऐसे आकार वाले बहुत फुर्ती से इधर-उधर रेंग कर संचार करने लगे ।

देखनेवालों का मुँह आश्चर्य से खुले का खुला रह गया । वे सब अचानक चिल्लाने लगे कंबली कीडा ! कंबली—कीड़ा ।

इस तरह के कई कीडों के चित्र वैद्यजी ने परदे पर दिखाये । फिर उन्होंने समझाना शुरु किया—

"अब तक आपने परदे पर जो चित्र देखे वे सब कीटाणुओं के रूप थे । वे असल में इतने छोटे हैं कि हम अपनी आँखों से उन्हें देख नहीं सकते । कई हजार गुने उन्हें बडा कर के मैंने आपके सामने प्रस्तुत किया । सूक्ष्म दर्शी—यंत्र की सहायता के बिना कोई इन्हें देख नहीं सकता । इतते छोटे होते हैं ये कीड़े ।

गाँव के वैद्य ने आश्चर्य और शंका से पूछा—"क्यों ? वे इतने छोटे होते हैं ?" उनका मुँह खुले का खुला रह गया ।

वैद्यजी—"हाँ, हाँ, इस सूई को देखिये । क्या आप अंदाज लगा सकते हैं कि इसकी नोक में कितने कीटाणु रह सकते हैं ।"

समय में बैठे लोगों ने कहा—"एक, नहीं दस, नहीं, नहीं, बीस ।"

वैद्यजी ने कहना शुरु किया—"आप सब लोगों ने अनुमान तो लगाया, पर सब गलत इस सूई की नोक में कम से कम हजार कीटाणु आराम से रह सकते हैं।"

बैठे हुये सब लोगों के मुँह से एक साथ आवाज निकली—"अरे, बाप रे।"

फैलना

"इन कीटाणुओं के पैर नहीं होते हैं, न ही पंख..." वैद्यजी कह ही रहे थे कि बैठे हुए लोगों ने बात बीच ही में काटकर पूछा—

"तो फिर ये कैसे फैलते हैं ? हमारे शरीर में कैसे प्रवेश करते हैं ?" गाँव के वैद्य की आवाज उत्साह से भरी हुई और ऊँची थी।

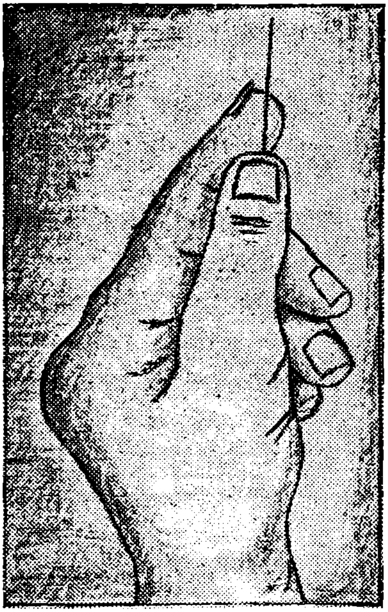

वैद्यजी—"सारे कीटाणु इतने सूक्ष्म होते हैं कि धूल के साथ, उन पर हजारों की संख्या में बैठकर आराम से यात्रा कर सकते हैं, और करते हैं।"

पहलवान महमूद ने प्रश्न किया–"अच्छा तो ये हवा में उड़नेवाली धूल पर बैठजर उनके साथ-साथ जाते हैं ?"

वैद्यजी–"हाँ, हाँ, इस संसार में क्या ऐसी कोई जगह है जहाँ हवा नहीं पहुँचती है ? तो हवा के साथ-साथ ये भी पहुँच जाते हैं। धूल पर ये सवारी करते हैं। जहाँ-जहाँ धूल जमें वहाँ-वहाँ ये भी रहते हैं। हम जब साँस लेते हैं तब साँस के साथ फेफड़ों में प्रवेश करते हैं। यह रोग के कीटाणुओं के फैलने का एक तरीका है। इसके अलावा खुला हुआ भोजन, पीने का पानी आदि पर जब धूल पड़ती है तब वे उनके साथ मिलकर हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं।"

पुजारीजी को विश्वास करने में थोड़ी तकलीफ़ हुई। उन्होंने पूछा—"साहब, आप कहते हैं कि ये कीटाणु बहुत ही छोटे हैं, दिखाई नहीं देते हैं। तो इतने छोटे कीटाणु कैसे हमारे इतने बड़े शरीर में रोग का कारण बनते हैं ? मुझे कुछ समझ में नहीं आता।"

५. छूत से लगनेवाले

"पुजारीजी, मैं स्वयं ही समझानेवाला था। आपने पूछ ही दिया। लीजिये, सुनिये, रोग के कीटाणु हमारे शरीर में प्रवेश कर अलग-अलग अंगों में जम जाते हैं। हमारे अंदर जो भोजन पहुँचता है उसे ये ले लेते हैं और पुष्ट होते जाते हैं। वहीं उनका परिवार बढ़ने लगता है। उनकी संख्या में वृद्धि होती है। ये अपने खाने के लिये दूसरों पर सदा निर्भर रहते हैं। इसलिये वैज्ञानिकों ने इन्हें परोपजीवी [1] नाम दिया है।" वैद्यजी ने समझाया।

पुजारीजी ने हँसते हुये पूछा–"परोपजीवी हैं या परदेशी ?"

वैद्यजी–"आप जैसे कहते हैं वैसे इन्हें परदेशी भी कह सकते हैं परदेशी भी तो अपने भोजन के लिये दूसरों पर आश्रित रहते हैं।

---

1. परोपजीवी = PARASITES

लेकिन परदेशी और इन कीटाणुओं में थोड़ा अंतर है। परदेशी दूसरों से मांगकर भोजन लेते हैं, पर ये बड़े चालाक हैं। हमारी अनुमति के बिना ही हकारे शरीर मैं घुसकर वहाँ हमारे भोजन में पाये जाने वाले पोषक तत्वों को मनमाने ढंग से लूटकर खाते हैं। शायद इसीलिये वैज्ञानिक लोगों ने इन्हें परदेशी न कहकर परोपजीवी कहा है।

"अच्छा, तो हमारे शरीर के सारे पोषक तत्वों को होड़ लगाकर ये कीटाणु णुखाते हैं जिससे हमारे शरीर को आवश्यक मात्रा में जो मिलना चाहिये नहीं मिलता है। इसकारण हमारा शरीर कमजोर हो जाता है और इनका बल बढ़ने के कारण हमें रोग हो जाता है। बात यही है न वैद्यजी?" गाँव के वैद्य ने शंका-निवारण के लिये पूछा।

"वैद्यजी, आप जैसे सोच रहे हैं वैसे उन कीटाणुओं के द्वारा पोषक-तत्व हड़पने मात्र से हमें बीमारियाँ नहीं होती हैं। ये जब हमारे शरीर से आहार ग्रहण करते हैं तब कुछ अनावश्यक तत्व भी विसर्जित करते हैं जो विषैले होते हैं। यह विषैला पदार्थ ही हमारी बीमारी का कारण बनता है।" कालूचंदजी ने कहा।

यह बात पहलवान के लिये असह्य लगी।

उसने कहा– "ये मुये कीटाणु इतने कृतघ्न हैं कि जहाँ रहकर खाते पलते हैं उसी स्थान को मटियामेट कर देते हैं। तब तो ये आस्तीन के साँप हैं। अमृत खाकर जहर उगलते हैं। ऐसों को कभी छोड़ना नहीं चाहिये। क्या हमारे शरीर के अंदर भी नमकहरामों की बहुतायत है? यह कैसे हो सकता है?" पहलवान की घनी मूँछें फड़कने लगी।

कालूचन्दजी ने कहा–"और क्या? ये कीटाणु यही तो करते हैं। हमारे शरीर से अच्छे-अच्छे पोषक तत्व चुन-चुनकर लेते हैं

और उनको पचाने के बाद इनकी जो त्याज्य-वस्तु [1] निकती है वह जहर [2] ही है। कुछ कीटाणु जीते जी इस वस्तु को त्यागते हैं। इसे बाह्य विष [3] कहते हैं वैज्ञानिक। कुछ और कीटाणु जब मर जाते हैं तब वे विकृत होकर जहर बन जाते हैं, इसे 'अन्तरविष' कहा जाता है। ये दोनो प्रकार के विष हमारे शरीर में लगनेवाले रोगों के कारण बनते हैं।"

यह सब सुनने के बाद गाँव के वैद्य की जिज्ञासा और बढ़ी। उन्होंने कालूचन्दजी से पूछा—"ऐसा हो तो भी ये कीटाणु इतने छोटे, है इतने सूक्ष्म हैं अगर जहर पैदा भी करेंगे तो कितना कर सकते हैं। इतने से जहर से हमारे इतने बड़े शरीर की क्या हानि हो सकती है? इतने बड़े शरीर को मारने की शक्ति क्या उनमें हो सकती है? क्या यह असम्भव तो नहीं लगती हैं।"

६. छोटी-छोटी बूंदों से महा समुद्र का निर्माण

"इतने छोटे कीटाणु हमारे बड़े शरीर को कैसे बिगाड़ते हैं?" सब लोग यही सोच रहे थे। परदे में कुछ चित्र दिखाई देने लगे। कालूचन्दजी ने लोगों का ध्यान उन चित्रों की ओर आकृष्ट करते हुये कहा—"मैं अब इन चित्रों की सहायता से आप लोगों को यही बात समझाने जा रहा हूँ कि छोटे-छोटे कीटाणु किस तरह हमारे स्वास्थ्य को खराब करते हैं।"

सब लोग परदे की ओर देखने लगे। वहाँ बादल धीरे-धीरे घिरने लगे। फिर उनसे बारिश की कुछ बूंदें गिरने लगीं। बूंदा-बाँदी से बारिश जोर पकड़ने लगी। भूमि पर बारिश का पानी जमा होकर पहले छोटे–छोटे नालों के समान बहने लगा। फिर ये छोटी नदियों का रूप धारण करने लगे। थोड़ा आगे चलकर बड़ी

---

1. जहर = TOXINS
2. बाह्य = EXO TOXIN
3. अन्तरविष = ENDO TOXIN

नदियाँ बहने लगीं । अंत में बारिश का पानी बाढ़ बनकर भयंकर रूप में हो-हल्ला करते हुये लुढ़कने लगा । फिर लोगों ने यह देखा कि बाढ़ के साथ घर, जानवर, मनुष्य पेड़-पौधे आदि बहकर जाने लगे । देखनेवाले सबके चेहरों पर भय का भाव प्रकट हुआ ।

कालूचन्द ने समझाया—"बादलों से जब बारिश की बूँदें छूटीं तब कितनी छोटी थीं, पर उन्होंने ही बारिश की शक्ति बढ़ाई। उन्होंने ही बाढ़ का रूप धारण किया । उन्हीं के कारण सारी नाश लीला मची रही । अब क्या हममें से कोई कह सकता है कि छोटी-सी बूंद ने कुछ नहीं किया ? इसी तरह छोटे-छोटे कीटाणु असंख्य हो जाते हैं तो उनका जहर भी बाढ़ के समान ही विनाशकारी हो जाता है । हमारा शरीर उस जहर से निष्क्रिय हो जाता है, रोग ग्रस्त हो जाता है । अब समझे ?"

७. बचने का उपाय

"अब देखिये इनका परिवार कैसे बढ़ता है । जैसे–जैसे इनकी संख्या में वृद्धि होती जाती है वैसे वैसे हमारे शरीर में रोग भी ज़ोर पकड़ता है ।" वैद्यजी ने कहा ।

मुँह पर अचरज नाचने लगा यह सुनकर, आँखें फट गईं। सबने चिल्लाकर कहा–"कितना बड़ा आश्चर्य !"

"अब आगे सुनिये। ये कीटाणु अन्य कीड़ों के समाना या चिड़ियों के समान अंडे नहीं देते हैं, और न ही जानवरों और मनुष्यों के समान बच्चे पैदा करते हैं। अब आप लोगों के मन में शंका उठ रही होगी कि इनका परिवार किस प्रकार बढ़ता है। प्रत्येक कीटाणु जब पूरी तरह विकसित होकर बढ़ जाता है तब दो-दो बनकर विभाजित हो जाता है। ये दोनों भाग दो कीटाणु बन जाते हैं।" वैद्यजी ने कहा।

"बाप रे !" सब आश्चर्य करने लगे।

"जब मैं कह रहा था कि एक कीटाणु दो में बँटकर दो-दो जीवित कीटाणु बनकर पुष्ट होकर संख्या में वृद्धि करता है तभी आप लोगों को इतना आश्चर्य हुआ तो आगे मैं जो बताने जा रहा हूँ उसे सुनकर तो आप लोगों के सिर में चक्कर भी आ सकता है। क्योंकि एक कीटाणु पूरी तरह पुष्ट होकर दो भागों में बँट जाता है, वे दोनों भाग बढ़कर पूर्ण विकास कर लेते हैं। इस काम के लिये क्या आप लोग जानते हैं कि कितना समय लगता है केवल बीस मिनट।" वैद्य ने कहा।

"क्या !" लोगों का मुँह थोड़ी देर तक खुला ही रहा। "बीस मिनट में एक पीढ़ी का विकास" उनके आश्चर्य का ठिकान न रहा।

अब कालूचन्दजी ने फिर उन लोगों से पट पर के चित्र को देखने के लिये कहा। परदे के एक कोने में एक घड़ी दिखाई दी। अब उसमें बारह बज रहे थे। परदे के बीचों बीच एक बिन्दु के समान काला सा एक धब्बा दिखाई दिया। घड़ी के सामनेवाले कोने में 'एक' संख्या सूचक चिह्न भी प्रकट हुआ। घड़ी की सूई खिसकती हुई चली और बीस मिनट के बाद रुक गई। परदे के बीच जो बिन्दु के समान एक काला-सा धब्बा था वह दो भागों में विभाजित

हो गया। अब दो धब्बे दिखाई देने लगे। कोने में जहाँ 'एक' संख्या सूचक चिह्न था वहाँ 'दो' दिखाई देने लगा।

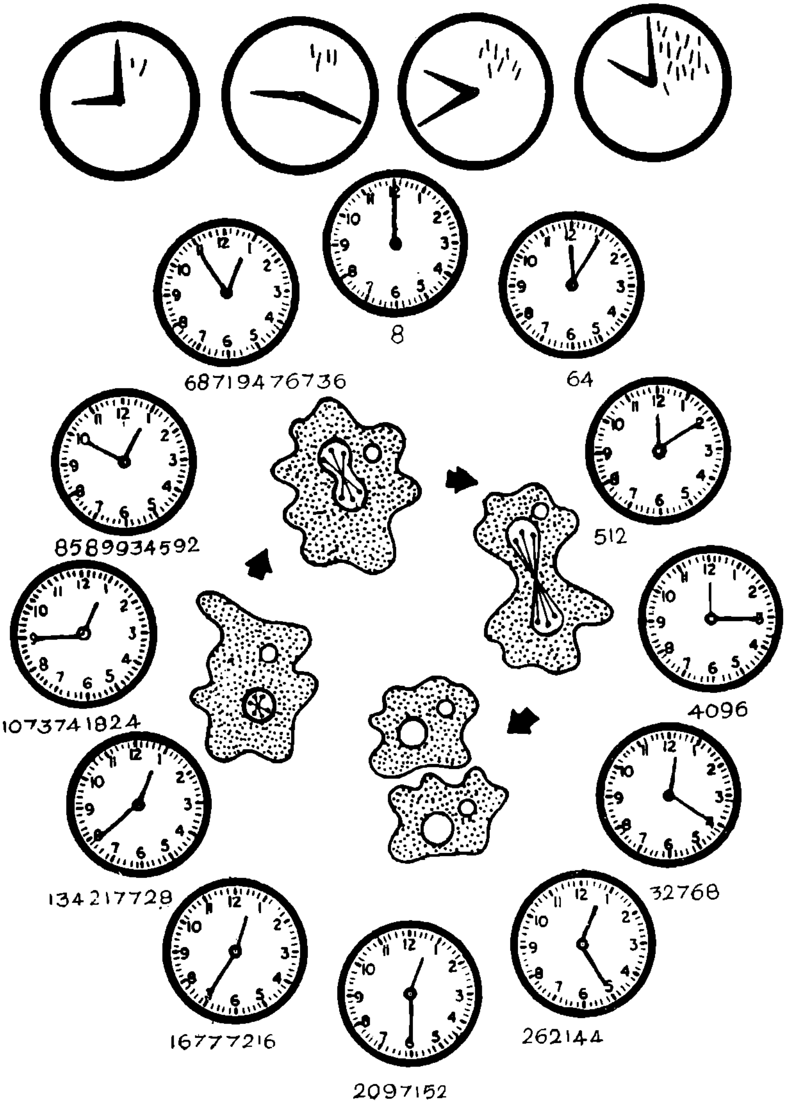

उसके बाद मिनट दिखाने वाली सूई बीस मिनट और आगे चलकर १२ बजकर ४० मिनट पर रुक गई। परदे के बीच के दोनों धब्बे दो-दो बनकर चार बन गए। अब कोने की संख्या 'दो' से 'चार' बन गई। यही क्रम प्रति बीस मिनट के बाद चलता गया। प्रत्येक बार काले धब्बों की संख्या दुगुनी होती गई। सफेद परदा काला होता गया। १२ बजे के समय ८ कीटाणु थे। एक घंटे के बाद उनकी संख्या ६४ हो गई। दो बजे के समय ५१२ और ४,०९६ कीटाणु हो गये। पाँच बजे देखा तो २,६२,१४४ छह बजे २०, ९७, १५२ हुए, सात बजे १६,७७७,२१६ कीटाणु, आठ बजे १३,४२, १७,७२८ नौ बजे १०७,३७,४१,८२४, दस बजे ८५८,९९,३४,५९२ तथा ग्यारह बजे ६८,७१,९४,७६,७३६ बनकर सारे परदे पर कीटाणुओं का पूरी तरह आक्रमण हो गया। सफेद परदा काला हो गया।

बैठे हुए सब लोगों ने इसे देखा। कभी क्या उन्होंने ऐसा कुछ देखा या सुना है? बारह घंटो में इस शीघ्रता से उन कीटाणुओं ने अपना परिवार बढ़ाकर सारी जगह पर अधिकार जमा लिया। किसनपुर गाँव वालों ने आश्चर्य प्रकट किया "बाप रे! कितना जल्दी ये कीड़े बढ़ते है!"

"हाँ, मेरे प्यारे ग्रामवासियो! बारह घंटों में रोग के कीटाणु करोड़ों की संख्या में उत्पन्न होते हैं। अब मान लीजिए कि एक कीटाणु से बहुत थोड़ा सा जहर निकलता हैं तो करोड़ों कीटाणुओं से कुल कितना जहर निकलेगा! जरा-जरा करके जहर की मात्रा बढ़ जाती है और उसके कारण कोई कड़ी बीमारी हो जाती है या प्राणों का अंत हो जाता है। अब मेरे ख्याल से मैंने आप लोगों को अच्छी तरह समझा दिया कि किस तरह इतने छोटे कीटाणु अपने परिवार बढ़ाकर रोग का कारण बनते हैं। इसके बारे में कोई शक है किसी को?" समझाने के बाद वैद्य कालूचन्द ने लोगों से प्रश्न किया।

गांव के वैद्य ने अब कालूचन्दजी की बात मान ली। उन्होंने कहा—"जी, ये कीटाणु इस प्रकार वृद्धि कर जहर निकालते रहेंगे तो जिस तरह एक–एक बूंद मिलकर बाढ़ का रूपधारणकर के विनाशलीला रचदेती है, उसी तरह शरीर रूपी संसार को कीटाणुओं की जहर रूपी बाढ़ भी वहा लेजाती है अर्थात् नष्ट कर देती है। अब मैं अच्छी तरह समझ गया।

ग्रामवासी डर गए। उन्होंने कहा—"आपके अनुसार तो हम जहाँ जाते हैं वहाँ रोग के कीटाणु हमारा पीछा करते हैं। हाथ धोकर पीछे पड़े रहते हैं। साँस लेने की हवा खाने के भोजन, पीने के पानी- इन सब में वे बैठ जाते हैं। और जैसे-जैसे हम सांस लेते हैं वे हवा के साथ नाक के द्वारा अंदर पहुँच जाते है। जब हम खाते हैं तब भोजन के साथ पेट में पहुँचकर राज्य करने लग जाते हैं रोग के ये कीटाणु। पानी पीते हैं तो उसके जरिए हमारे अंदर जाकर बैठ जाते हैं। फिर हम कैसे जी सकते हैं ? हमारा तो जीना ही असंभव है इन नाजुक परिस्थितियों में।"

७. इनसे कैसे बचें ?

"इस जनाब ने जो प्रश्न पूछा, बिलकुल ठीक पूछा। जब हम सब इन कीटाणुओं से घिरे हुए हैं तब जीने का उपाय ही क्या है ? इन सबके बावजूद मनुष्य जी रहे हैं, जीएँगे। कीटाणुओं के बीच जिन्दगी कैसे स्थिर है ? इसका भी तो कारण कुछ होगा ? वह क्या है ?" एक ग्रामवासी ने पूछा।

एक और ने भी इसका समर्थन किया—"हाँ जी, इतने सारे कीटाणुओं, रोगों के बीच मनुष्य का जीवन भी स्थिर है तो कैसे ? समझाइए न ?"

कालूचन्द ने समझाया—"जैसे आपने कहा वैसे कीटाणुओं और भयंकर रोगों से घिरे रहने पर भी मनुष्य आज तक जी ही रहा है। इसके कई कारण हैं। पहला कारण यह है कि मनुष्य शरीर में

इन कीटाणुओं को प्रवेश करने से रोकने का कुछ प्रबंध है। दूसरा कारण यह है कि इन सबके बावजूद यदि कोई कीटाणु शरीर में प्रवेश कर ही गया तो उससे लड़ने, उसे हैरान के लिये कुछ सेनाएँ और शक्तियाँ भी हमारे शरीर में मौजूद हैं।

सिपाही को आश्चर्य हुआ-"क्या! हमारे शरीर के भीतर सेनाएँ भी हैं? कभी सुना तो नहीं।"

वैद्यजी "हाँ, हाँ हमारे शरीर के भीतर कई प्रकार के सैनिक हैं। जब तक हमारे शरीर में शक्ति है, वह सुदृढ़ है, ये सैनिक भी मजबूत होते हैं। जब तक ये सैनिक अजेय होंगे तब तक कौन शत्रु अन्दर घुसने की हिम्मत कर सकता है। यदि ऐसा ही दुःसाहस कर कोई अन्दर घुसा तो उस शत्रु की बडी दुर्गति हो जाती है। शत्रु मार डाला जाता है।"

एक ग्रामवासी से अपनी शंका प्रकट की—"यदि हमारा शरीर कमजोर हो तो..."

"शरीर कमजोर हो जाता है तो उसके अंदर वास करनेवाले सैनिक भी कमजोर हो जाते हैं। जब सैनिक कमजोर हो जाते हैं तब कीटाणु रूपी शत्रु का शिकंजा मजबूर हो जाता है। उसका बोलबाला होने से सैनिक युद्ध में हार जाते हैं और मर भी जाते हैं। तब वह शरीर भी मर जाता है।" वैद्यजी ने समझाकर कहा।

'हाथ, हाथ' की गूँज चारों ओर से उठने लगी। पहलवान ने मूँछों पर ताव देते हुए कहा—"मुझ कोई रोग कुछ भी नहीं कर सकता। मेरा बाल भी बाँका नहीं हो सकता—सच मानिए।"

वैद्यजी इसे मानते हुए कहने लगे "पहलवान साहब का कहना बिलकुल सच है। शरीर सुदृढ़ रहेगा तो रोगों के बारे में चिंता करने की कोई जरूरत नहीं।"

८. हमारा शरीर एक किला है

"हमारे शरीर की तुलना एक किले से की जा सकती है। जब हमारा शरीर किला है तो उसके ऊपर की चमड़ी परकोटे का काम करती है। अगर कोई किला बना है तो उसके कई द्वार भी होने चाहिए। शरीर रूपी किले के द्वार हैं–आँख, कान, नाक और मुँह। हम सदा घूमते रहते हैं, चलते-फिरते रहते हैं। इसलिये हवा के साथ धूल आकर शरीर पर बैठ जाती है। क्या खाली धूल? नहीं-नहीं उसके साथ-साथ कीटाणु भी शरीर की चमड़ी पर जम जाते हैं। लेकिन किले का परकोटा मजबूत हो तो कौन शत्रु आसानी से अंदर घुस सकता है? अर्थात् चमड़ी के पार अंदर कीटाणु कैसे प्रवेश कर सकता है?" वैद्यजी कहते गये।

एक ग्रामवासी ने पूछा–"क्या ऐसी बात है? लेकिन हमारी चमडी तो नाजुक है। ये कीटाणु यदि घुसना चाहें तो क्या घुस नहीं सकते? कितनी देर लगेगी इसके लिये है?"

९. पसीना एक कीटाणु नाशक साधन है

कालूचन्दजी ने कहा, "हाँ, आपका कहना सच है। हमारे शरीर से जो पसीना निकलता है उसमें कीटाणुओं को नाश करनेवाले अम्ल रहते हैं। इसके अलावा रोम कूपों से निकलने वाले तैलाक्त द्रव में लाक्टिक अम्ल [1] निहित है। वह तेज कीटाणु नाशक है।"

"अच्छा, अच्छा, यही वस्तु हमारी चमड़ी पर जमे कीटाणुओं का नाश करती है। है न?" ग्रामवासी समझ गये।

"ठीक-ठीक समझे। शरीर का जो कवच है चमडा, उसे पार कर अब वे कीटाणु कैसे घुस सकते हैं अंदर?" लेकिन अन्दर जाने के लिये कई द्वार हैं जैसे कान, नाक, मुँह, आंख। क्या ये कीटाणु इन द्वारों के जरिए अन्दर नहीं पहुँचेगे? यह संदेह आपके मन में

---

1. लाक्टिक अम्ल LACTIC ACID

सहज रूप से उठ सकता है। मैं अब इस शंका का समाधान करूँगा।" वैद्यजी बोले।

गांववाले बड़े खुश हुए–"हाँ, वैद्यजी, यही हम आप से पूछनेवाले थे। इतने में आपने स्वयं कह दिया।"

१०. बिना पट के द्वार :

"कान, नाक आदि बिना किवाड़ के द्वारों के समान सदा खुले पड़े रहते हैं। आँखें बन्द होकर खुल सकती हैं, मुंह भी बन्द हो सकता है और खुल सकता है। लेकिन इन्हें भी सदा कैसे बन्द रख सकते हैं? जब इन्हें खोलते हैं तब रोग के कीटाणु शरीर के अन्दर घुस जाते हैं। पर प्रकृति माता ने इन कीटाणुओं को रोकने का प्रबंध कर रखा है।"

वैद्यजी के शब्द एक से एक आश्चर्य देने वाले थे। एक व्यक्ति ने पूछा–

"अच्छा, वह कैसा प्रबंध है वैद्यजी, बताइए न !"

"अब सुनिए ; नाक और गले में एक प्रकार का द्रव छूटता है जो चिकना होता है। उसे हम बलगम या कफ कहते हैं। वैद्यक शास्त्र में इसे श्लेष्मा कहा जाता है। अब नाक और मुँह के द्वारा अन्दर घुसने वाले कीटाणु इस कफ की चिकनाई में, चिपक जाते हैं और शरीर के अन्दर जाने में असमर्थ होकर वहीं रहकर मर जाते हैं। इतना ही नहीं, इस कफ में और मुँह में सदा लार के समान छूटने वाले थूक में कई अम्ल मौजूद हैं। ये सब अम्ल भी कीटाणु-नाशक हैं। इसलिए मुँह के द्वारा जो कीटाणु अन्दर प्रवेश करना चाहते हैं उनका और नाक के द्वारा भीतर घुसने की चेष्टा करने वाले कीटाणुओं का अंत वहीं हो जाता है। वे आगे बढ़ने ही नहीं पाते हैं।"

"ऐसा कहिए"—हर्ष के साथ लोगों ने चिल्लाकर कहा और वैद्यजी को भी प्रोत्साहन मिला।

"अब रही कानों की बात। और कहीं कीटाणुओं की दाल न गली तोवे कान के छेदों से धूल के साथ अन्दर जाना चाहते हैं। अब क्या कान किसी से कम हैं उन कीटाणुओं को अन्दर जाने देकर चुप चाप बैठे रहेंगे। वे भी कुछ न कुछ अवश्य करेंगे। देखिए "कुछ न कुछ" कानों का क्या होता है। वे भी एक तरह का चिकना पदार्थ छोड़ते हैं जिसमें धूल के साथ आते हुए कीटाणु चिपक जाते हैं। क्योंकि उस पदार्थ में भी एक प्रकार का अम्ल निहित है जो कीटाणुओं को मार देता है। अब आँखों की बारी है। आँखें सदा गीली रहती हैं। क्या आप जानते हैं इस नमी के पीछे क्या रहस्य हैं ?"

लोगों ने वैद्यजी के प्रश्न का उत्तर 'नहीं' में देते हुए सिर हिला दिया।

वैद्यजी बोले—"आँखों से छूटनेवाला तरल पदार्थ आँसू कहलाता है। इसमें लाइसिन [1] नामक तेज [2] कीटाणु-नाशक पदार्थ मौजूद है। आँसू जब बहने लगते हैं तब जब कभी मुँह में लग जाते हैं तो इनका स्वाद भी हमें मिल जाता है। इस प्रकार प्रकृति की पूर्ण कृपा हम पर है। हर एक अंग भर सक प्रयन्न करता है इन कीटाणुओं को मारने का।"

लोगों ने अचरज-भरी आवाज में हर्ष ध्वनि की-"अच्छा, अच्छा! आपके कहने के अनुसार किले के इन द्वारों के जरिए भी कीटाणु जल्दी अन्दर नहीं घुस पाते हैं, यही हुई न बात?"

इतनी देर चुप रहने के बाद गाँव के वैद्य ने पूछा—"आपने अभी कहा कि आँख, नाक, मुँह, कान आदि के द्वारा कीटाणु अंदर प्रवेश करने में असमर्थ हो जाते हैं। वहाँ सब सुरक्षा का प्रबंध है। मान लिया। लेकिन इन सबके होने पर भी हमें कई रोग समय-समय पर हो जाते हैं। उसका क्या कारण है?"

सबने कहा, "हाँ, हाँ, हम लोग यही सोच रहे थे।"

वैद्यजी "मैं यही बतानेवाला हूँ कि हमारी बीमारियों के और कौन-कौन से कारण होते हैं।"

११. अस्वच्छ आदतें

"इतने सुदृढ़-सुरक्षा-प्रबंधों के होने पर भी रोग के कीटाणु हमारे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। उसका मूल कारण हमारी कुछ बुरी आदते हैं। पहला कारण यह है—हम हाथ ठीक-से धोए बिना खाना खाने बैठ जाते हैं। हमारे हाथ में जो गंदगी है वह भोजन के साथ हमारे पेट में पहुँच जाती है। गंदगी के साथ-साथ कीटाणु

---

1. लाइसिन LYSINE

2. तेज VIRULENCE

पेट में जाकर बैठ जाते हैं। दूसरा कारण बहुत मामूली है, पर महत्वपूर्ण है। खाना बनाने के लिए जो बरतन इस्तेमाल में लाये जाते हैं उनको बहुत साफ होना चाहिये, नहीं तो उन में लगी गंदगी

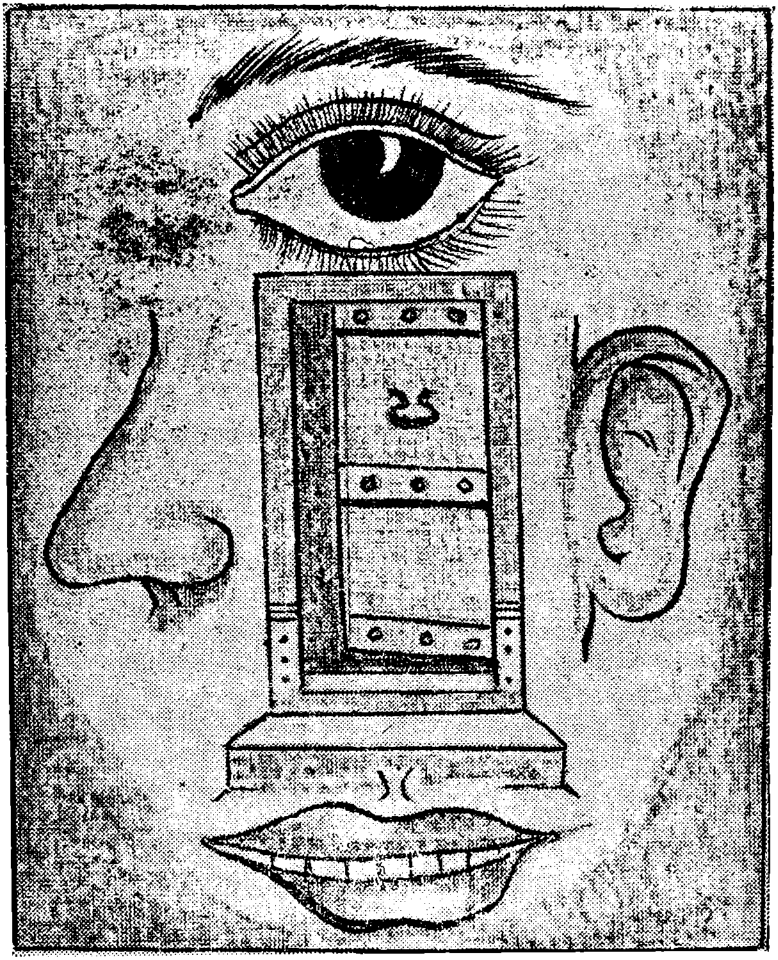

के साथ कीटाणु हमारे अंदर पहुँच जाते हैं। पानी पीने के बरतनों का बहुत साफ होना जरूरी हैं। मान लीजिए वे बरतन गंदे हैं तो उनमें जमकर बैठे कीटाणु हमारे मुँह के रास्ते शरीर में पहुँचकर

वृद्धि करने लगते हैं। थाली को भी बहुत स्वच्छ होना चाहिए। नहीं तो भोजन के साथ वे भी अंदर जाकर अपना राज्य शुरु कर देंगे। तीसरा कारण यह है कि हम पीने का पानी, खाने का भोजन- इन्हें ठीक से ढककर नहीं रखते हैं। इसलिए उन पर हवा के साथ धूल उड़कर आती है और बैठ जाती है। हमने तो पहले ही देख लिया कि धूल के साथ कीटाणु अवश्य ही हुआ करते हैं। ये कीटाणु खाने-पीने आदि के साथ उन पर सवार होकर आराम से पेट में चले जाते हैं।

पेट में भी कुछ अम्ल उत्पन्न करने वाली ग्रन्थियाँ हैं। पर इन सबसे बचकर वे कीटाणु छोटी आंत तक चले जाते हैं तब देखना चाहिए उनका मजा! छोटी आंत वैसे टेढ़ी-मेड़ी और मुड़ी हुई होती हैं। उसमें वे आराम से बस जाते हैं और अपना परिवार बढ़ाने का काम शुरु कर देते हैं। इसमे हमें आंत संबंधी बीमारी हो जाती है। अधिकतर पेट संबंधी रोग इस प्रकार अंदर प्रविष्ट हुए कीटाणुओं के कारण हो होते हैं।

अब देखिए, मैं जों कहने जा रहा हूँ यह हर घर में अवसर हुआ करता है। छोटे वच्चे जब घुटने के बल रेंगने लगते हैं तब उनकी हथेलियों में फर्श पर की मिट्टी, धूल आदि लग जाती हैं। थोडी दूर जाने के बाद वे बच्चे बैठ जाते हैं। यह उनकी स्वाभाविक क्रिया है। बैठते ही वे अपने अंगूठे या उँगली को मुँह में डालकर चूसने लगते हैं। ऐसा करने से उनके पेट में अत्यधिक संख्या में कीटाणुओं के पहुँचने की संभावना है और होता भी यही है। इसके अलावा कुछ बच्चे नीचे पड़ी हुई चीजें, मिट्टी आदि को उठाकर मुँह में डाल लेते हैं। इनकी खोज में वे सदा नीचे देखते रहते हैं। इस स्थिति में कितनी आसानी से कीटाणु उनके अन्दर प्रवेश करते होंगे! बडों में जो शक्ति रोग के कीटाणुओं का सामना करने की होती है वह छोटे बच्चों में नहीं होती। इसीलिए वे अन्य पशु-पक्षियों के शावकों के समान न होकर कई दिन सब काम के लिए बड़ों पर निर्भर रहा

करते हैं। कीटाणु भी जब बच्चों के अन्दर पहुँचते हैं तब वहाँ का वातावरण उनके अनुकूल होता है। बच्चे जल्दी बीमार पड़ जाते हैं न? उसका यही कारण है।

एक और मुख्य बात की ओर हमें ध्यान देना है। अस्वस्थ लोग जिन बरतनों से खाते-पीते हैं और जिनका उपयोग करते हैं उनमें असंख्य रोग के कीटाणु लगे होते हैं। इसलिए मान लीजिए किसी खास गिलास से बीमार आदमी ने पानी पिया या थाली में खाना खाया, उसे जब तक उबलते पानी न धोकर साफ करें तब तक दूसरों को इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। बिना साफ किए उपयोग करते हैं तो जो इस्तेमाल करते हैं वे बीमार हो जाते हैं।

यही बात बीमार के कपड़े और बिस्तर के सम्बन्ध में भी मुझे कहनी है। बीमार आदमी के कपड़ो को उबले पानी से धोना चाहिए, धूप में सुखाना चाहिए। अगर बिना धोए उन कपड़ों का कोई इस्ते माल करता है तो वह जरूर बीमार पड़ता है। इन सब कारणों को देखते हुए हमें थोड़ा सावधान रहना चाहिए।" कालूचंद ने कहा।

१२. जलाशयों की गंदगी

"गंदे पानी को पीने से अनेक प्रकार के रोग लग जाते हैं। हैजा, तपेदिक आंत के रोग, आँव-दस्त, पीलिया आदि भयानक रोगों के पीछे गंदे पानी का ही हाथ होता है। कुछ गाँवों में एक ही तालाव या झील होगी। लोग पीने और खाना बनाने के लिए उसी पर निर्भर होंगे और वहीं से पानी भर लाएँगे। लेकिन गाँव के और लोग उसी जलाशय में जाकर कपड़े धोएँगे, नहायेंगे, जानवरों को नहलाएँगे बरतन माँजकर साफ भी करेंगे। उसी जलाशय में कुछ लोग बीमारों के कपड़े लाकर धोएँगे। इन सबके कारण जलाराय जलाशय का पानी पूरी तरह गंदा हो जाता है। उसमें कीटाणु की भरमार हो जाती है। उस पानी को पीने के काम में लायेंगे तो अवश्य पीनेवाले बीमार पड़ेंगे। वैसे भी देखा जाय तो जलशय सब खुले रहते हैं। इसलिए वहाँ से पानी लाने पर उसे अच्छी तरह उबालना चाहिये।

मामूली तौर पर यदि गरम करते हैं तो कीटाणु नहीं मरेंगे । इसलिये पीने के पहले पानी को उबालना चाहिये । जब पानी उबलने लगता है तब कीटाणु नष्ट हो जाते हैं ।"

और भी एक बात है । कुछ घरों में पीछे या आंगन में कुआँ होता है । कुएँ के चारों ओर कुछ लोग जगत बनाते हैं और कुछ लोग नहीं बनाते हैं । जहाँ जगत नहीं है वहाँ घर के स्नानघर का पानी गोशाला को धोने का पानी, नाली का पानी आदि गंदगी जमीन के ढालू होने के कारण कुएँ में जा गिरती है । इससे कुयें का पानी अशुद्ध होकर, सडकर, रोग उत्पन्न करने का साधन बन जाता है । हमें जहाँ तक हो सके ऐसी गंदगी को कुएँ के पानी से मिलने न देना चाहिये । पाखाना और स्नान गृह को कुएँ से दूर बनाना चाहिये । कुएँ की जगत के अंदर अर्थात् भीतर-बाहर चूना छुआना चाहिये, साफ रखना चाहिये ।" कालूचन्दजी ने खूबी से समझाया ।

१३. मक्खियाँ

'अब मैं बहुत ही बुरी आदत, पर अक्सर लोगों में पायी जानेवाली आदत के बारे में बतानेवाला हूँ । कुछ लोग, उदाहरण के लिए खोमचेवालों को खाने पीने की चीजें बेचते हुए देखते हैं । उनपर मक्खियाँ भिन भिनाती रहती हैं । इन चीजों को खरीद कर खाना रोग को निमंत्रण देना होता है । कई बीमारियाँ इस आदत के कारण फैलती हैं ।''—वैद्य कालूचंदजी ने कहा ।

बैठे हुए लोगों में से कइयों ने उत्सुकता से पूछा—'कैसे? क्यों?' वे लोग सब इस तरह की चीजें खरीदते थे ।

वैद्यजी-'बताता हूँ सुनिए । हमारे मल-मूत्र पर मक्खियाँ बैठती हैं । खाली बैठना ही नहीं, उन्हें खाती भी हैं । सड़ी - गली चीजें उनके लिए जान से भी प्यारी हैं अर्थात् बहुत पसंद हैं । बीमार लोगों से लेकर साधारण लोगों तक की थूक और उनका कफ उन्हें बडे अच्छे लगते हैं । सब गंदी चीजे मक्खियाँ चाव से खाती हैं । क्या मक्खियों को किसी चीज पर भिन भिनाते हुए आपने देखा है । उनका, खाने का तरीका बहुत ही घृणित है । वे खाने पर बैठकर पहले अपनी थूक उस पर उगलकर तरल बना लेती हैं । फिर आनंद

से, आराम से उसे चूसकर खुश होती हैं। जहाँ भी गंदगी होगी वहाँ हम मक्खियों के बादल देख सकते हैं। मक्खियों का खास आकर्षण ही गंदगी है। अब जब मक्खियाँ गंदगी को तरल बनाने के लिए थूक उगलती हैं तब गंदगी में मौजूद कीटाणु उनके पेट में चले जाते हैं। उसके बाद हमारे भोजन पर वे आकर विराजमान होती हैं। फिर उनका खाने का तरीका तो वही होता है। अपने मुंह से थूक टपकाएँगी हमारे भोजन को घोलने के लिए। तब उनके पेट से कीटाणु थूक के साथ मिलकर बाहर निकलकर हमारे भोजन में मिल जाते हैं। इसके अलावा उनके पैरों में भी कीटाणु होते हैं और वे भी हमारे भोजन में मिल जाते हैं।

'छिः, छिः,' कहकर सब लोगों ने अपनी घृणा प्रकट की। 'क्या वे हमारे मल-मूत्र, बलगम आदि पर बैठकर चूसकर फिर वैसे ही आकर हमारे भोजन में थूक देती हैं? बहुत गंदा, बहुत ही गंदा।' कइयों ने कहा।

'उन मक्खियों का अत्याचार वहीं तक सीमित नहीं रह जाता है। मक्खियों के पूरे शरीर पर रोएँ उगे होते हैं। पैरों के नीचे का भाग बड़ा मुलायम होता है, नम भी। जब मक्खियाँ गंदगी पर बैठती हैं तब पैरों में तथा शरीर के रोएँ में असंख्य कीटाणु चिपक जाते हैं। अब समझ लीजिए जब वे हमारे भोजन पर आकर बैठती होंगी तो क्या होता होगा उस भोजन का।'

गाँव के मुखिया ने लोगों की ओर मुड़कर कहना शुरू किया— 'सुना, वैद्यजी क्या कह रहे थे? कभी भी हमें अब से उन चीजों को नहीं खाना चाहिए जिन पर मक्खियाँ भिन भिना रहीं हो। मक्खियाँ साधारण नहीं, जानलेवा हैं इसका मतलब।'

सब लोगों ने सिर हिलाकर मान्यता की सूचना दी। कालूचंदजी भी आगे कहने लगे।

१४. गंदी हवा और रोग

अब तक मैंने चार मुख्य बातों के बारे में जानकारी दी। पाँचवाँ बात यह है कि हम लोग बिना मनोरंजन के जी नहीं पाते। सदा काम करते रहेंगे, गंभीर रहेंगे तो क्या पगला नहीं जएँगे। हमारे मनोरंजन के साधनों में अत्यधिक लोकप्रिय साधन है सिनेमा। जब सिनेमा देखने जाते हैं तो कभी आपने ध्यान दिया है सिनेमा हाल कैसा होता है। उसमें कई लोग साथ बैठते हैं। इसके अलवा सिनेमा के शुरू होते ही सारे दखाजे बन्दकर दिए जाते हैं। आपने महसूस किया होगा–सर्दी में भी पिक्चर हॉल में गर्मी लगने लगती है। कभी सोचा है उसका कारण क्या है? हम जब साँस अन्दर खींचते हैं तब प्राणवायु को लेते हैं। जब नाहर साँस छोड़ते है तब

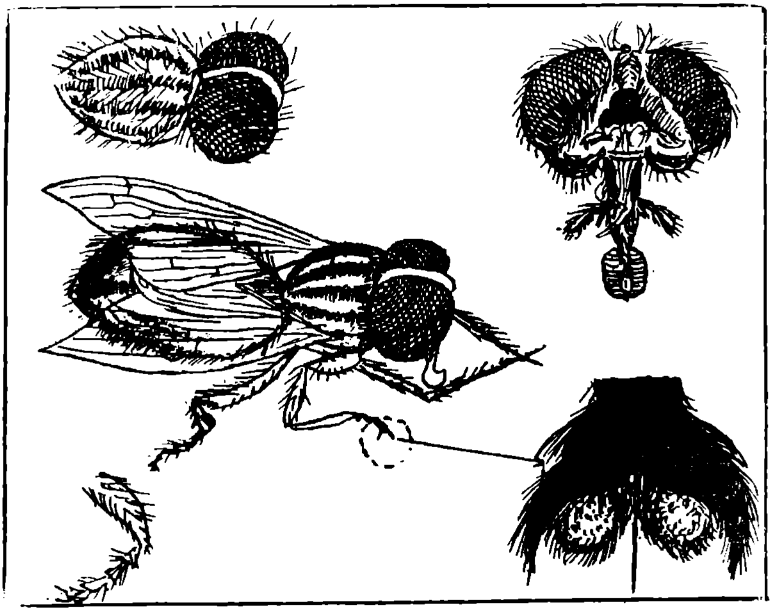

भाप, कार्बन-डाइ-आक्साइड, और कुछ गंदगियाँ आदि बाहर निकलती हैं। बंद सिनेमा थियेटर में बाहर की हवा नहीं आ पाती है। लोग साँस छोड़ते हैं तो उसमें मिली गंदगी हाल में भर जती है। अर्तात् उसी हवा को हम सब साँस लेते समय अंदर खींचते है। फिर

बाहर निकलती है इस तरह उसी हवा में बार-बार साँस लेते- छोड़ते रहने से भाप की मात्रा, कार्बन-डाई-आकसाइड़ की मात्रा बढ़ जाती है और हवा गरम लगती है हमें ।'

'अक्सर सिनेमा देखने वालों को खाँसी, क्षय, दमा जुकाम आदि बीमारियाँ आसानी से लग जाती हैं। क्षय रोग से पीड़ित लोग, दमावाले बीमार आदमी-औरत भी तो सिनेमा देखने आते होंगे। वे जब साँस छोड़ते हैं तब रोग के कीटाणुओं को भी बाहर छोड़ते हैं। उसी गंदी हवा में, बैठे हुए सब लोगों को साँस लेनी पड़ती है। तब रोग के कीटाणु साँस के साथ दूसरों के फेफडों में प्रवेश कर जाते हैं। फिर उनको भी दमा या क्षय आराम से, आसानी से हो जाता है।

एक बूढ़े आदमी ने अपना दुखडा रोया—"यह क्या अन्याय है? पैसा देकर सिनेमा देखने जाते हैं। पर उस पैसे से क्या बीमारी ही खरीद लाते हैं? सचमुच यह घोर अन्याय है। आज कल हमारे युवक और हमारी युवतियों को अक्सर सिनेमा हाल में ही देख सकते हैं। क्या वे लोग रोग मोल लेने ही जाते हैं? जी वैद्यजी! आप थोड़ा उन लोगों को समझाइए न! वे सब के सब बीमार पड़ जाएँगे तो गाँव की हालत क्या होगी? हे ईश्वर! हमारी रक्षा करो, इन युवक-युवतियों की रक्षा करो" उनकी आवाज में भावुकता भारी थी।

१५. घाव

"हमने कहा कि कीटाणु कभी चमड़ी को चीर-फाड़कर अंदर नहीं घुस सकते। कभी–कभी उनको अच्छा मौका मिल जाता है। जब कोई चलता रहता है तब मान लीजिए किसी लोहे के कारण, कील या मेक के कारण, या चाकू के कारण उसे चोट लग जाती है, चमडी फट जाती है तब उस औजार या चीज में लगे कीटाणु घाव में घुस जाते हैं। यदि घाव खुला रह गया तो हवा के साथ कुछ कीटाणु बहकर उस घाव के द्वारा अन्दर जा सकते हैं। इसलिए जब कभी हमें कोई घाव लगे तो उसे खुला नहीं रहने

देना चाहिए। नहीं तो बेकार में हम रोग–ग्रस्त हो जाएँगे। प्रकृति माता ने हमें कई तरह से सुरक्षित रखने का प्रबंध कर रखा है। फिर भी हम बीमार पड़ जाते हैं। यही दुःख की बात है।" वैद्यजी ने कहा।

गाँव के मुखिया चौधरी साहब उठकर खड़े हुए। अपने गाँव के लोगों से कहा–"मेरे प्यारे गाँव वासियो, हमारी बीमारियों के कारणों पर बड़े सुन्दर रूप से वैद्य कालूचंदजी ने प्रकाश ड़ाला। मेरे ख्याल से आप सब वैद्यजी की बातें समझ गए होंगे। अब हमें यह भी पता चल गया कि हममें क्या-क्या बुरी आदतें हैं। उन बुरी आदतों को हमें बिल्कुल, छोड़ देना चाहिए। तभी हम सुख से जी सकते हैं। हम सुखी होंगे तो गाँव सुखी होगा।" वैद्यजी के प्रति हम सब को आभार व्यक्त करना चाहिये। बहुत उपयोगी और अच्छी बातें उन्होंने बताई हैं।

वैद्य कालूचंदजी हँसते हुए बोलने लगे 'मुझे अभी धन्यवाद मत दीजिए आप लोगों के साथ मुझे और थोडा सयय बिताना है। मजे–दार और फायदेमंद बातें जौर भी कुछ बाकी हैं। तो अब आगे सुनिए, किसी भी कारण से किसी को कोई बीमारी लग जाती है तो हमें क्या करना चाहिए? किस तरह बचना चाहिए? इसके बारे में भी हमें सोचना चाहिए। प्रकृति माता यहाँ भी हमारी रक्षा के लिए तैयार रहती है। वह सदा हमारी चिंता करती रहती है।"

"अच्छा!" लोगों ने कहा।

वैद्या-"यदि किसी किले पर शत्रु का आक्रमण हो या द्वार से शत्रु अंदर घुस जायँ तो क्या अंदर के सैनिक चुप चाप बैठे रहेंगे?"

लोग-"नहीं, नहीं, उनसे लडेंगे।"

वैद्य–"उसी तरह इस शरीर रूपी किले में भी तरह–तरह के सैनिक छिपे बैठे हैं।

सिपाही जोर से हँस पडा। उसने पूछा "शरीर के भीतर सैनिक? यह कैसे संभव हो सकता है?"

वैद्य-"हाँ, आपने दो महायुद्ध देखे हैं न? इसलिए संदेह उठता है कि कैसे हमारे शरीर के अंदर सैनिक हो सकते हैं?"

सिपाही-"जी हाँ।" उसके शब्दों में खुशी प्रकट हुई।

वैद्य-"शरीर के अन्दर जो सैनिक हैं वे भी आप ही के समान बड़े बीर हैं। उनके युद्ध करने का ढंग भी बड़ा अनोखा होता है। अब बताता हूं वे कैसे युद्ध करते हैं।"

मैंने कहा न कि शरीर रूपी किले की, चमड़ा रूपी परकोटा सुरक्षा करता हैं। अब चमड़ा कहीं फट गया अर्थात् कहीं घाव लग गया तो कीटाणु अन्दर घुसना चाहतें हैं और प्रयत्न भी करते हैं। उस समय हमारे शरीर के अन्दर बैठे सैनिक किस तरह का युद्ध उनके साथ करते है? कैसे उनका सामना करते हैं? आपको मालुम है?"।

सिपाही की आवाज पहले आयी-"नहीं, आप बताइए" सब लोग सुनने के लिए उत्सुकता से तनकर बैठे।

१६. बाहर जाओ

"शरीर की चमड़ी पर जब कोई चोट लगती है तब जिसके कारण या जिस वस्तु से चोट लगे उस पर लगे कीटाणु घाव के जरिए अंदर घुसने लगते हैं। इनके अलावा हवा में उड़कर आयी धूल घाव पर बैठ जाती है। उस धूल में उड़कर आये कीटाणु अन्दर जाने लगते हैं। मैंने ये सब बातें पहले ही कह डाली थी। अच्छा तो आगे सुनिए। जब ये कीटाणु घाव के द्वारा अन्दर जाने लगते हैं तब उस घाव की ओर खून और चर्बी [1] बहकर आते हैं। घाव से

---

1. वसा (चर्बी) LYMPH

ये बाहर निकलेंगे। वे जब बाहर निकलते हैं तब कीटाणुओं को ती बाहर ढकेलते हैं। अन्दर आने ही नहीं देते हैं।

"इसके अलावा खून में कई प्रकार के रासायनिक तत्व भी पाए जाते हैं, उम्ल पाए जाते हैं। ये सब कीटाणु–नाशक हैं। अतः कीटाणुओं को वे मार डालते हैं। जहाँ हमारे शरीर में घाव होता है वह जगह सूज जाती है और लाल हो जाती है। इसका कारण यह है कि उस जगह पर अधिक रक्त आ रहा है। फिर आपने यह भी अनुभव किया होगा कि घाव लगते ही जलन होती है। इस जलन का कारण खून के साथ बहकर आया हुआ अम्ल और रासायनिक तत्व ही हैं।"

"अब आप पूछ सकते हैं कि घाव से खून लगातार कीटाणुओं को निकाल बाहर करने के लिये बहता रहेगा तो खून की कमी के कारण क्या मनुष्य मर नहीं जायेगा ?"

लोगों ने कहा–"जी हाँ, यही हम लोग पूछनेवाले थे।"

वैद्य—"मुझे मालूम था कि आप लोगों के मन में यह प्रश्न अवश्य उठेगा। हाँ, यह तो सच है कि जब ज्यादा खून बह निकलेगा तो जरूर मनुष्य मर जाएगा। इसलिए घाव का मुँह जब तक बन्द नहीं होता तब तक रक्त बहता रहेगा। उसके बाद बहना बन्द हो जायगा।"

गाँव के वैद्य ने तुरंत पूछा—"यह क्या? आपने थोड़ी देर पहले कहा था कि शरीर में यदि कीटाणु घुस गाये तो उससे लड़ने के लिये सिपाही होते हैं अन्दर। फिर अभी कह रहे हैं कि खून बहने से खराबी होगी। इसलिये खून का बहना बन्द हो जाता है। वह कैसे बन्द होता है? क्या अन्दर कोई मरम्मत करनेवाला बैठा रहता है? या राज वास करता है कि तुरंत ईंट–गारे से घाव को बन्द कर दे।" उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये कालूचन्दजी तैयार हुये।

१७. चलते–फिरते प्राथमिक चिकित्सा के डिब्बे

वैद्यजी—अगर हमारी चमड़ी कहीं से फट जाय अर्थात् घाव हो। जाय तो उसकी मरम्मत के लिये कोई राज या मजदूर नहीं होता है। हमारे खून में ऐसे कुछ साधन हैं जो प्राथमिक-चिकित्सा के डिब्बे जैसे हैं। ये साधन अंग्रेजी में प्लॉटलेट्स[1] कहलाते हैं। इनमें कुछ रासायनिक पदार्थ और कीटाणु-नाशक पदार्थ पाये जाते हैं। ये रक्त के साथ बहते रहते हैं। जब-जब जरूरत पड़े तब-तब प्लॉटलेट्स उस स्थान पर पहुँच जाते हैं जहाँ चोट लगी है और उसे भरने की कोशिश करते हैं। वे फूट जाते हैं और उनके अन्दर के कीटाणु-नाशक पदार्थ वहाँ से अन्दर घुसने की कोशिश करनेवाले

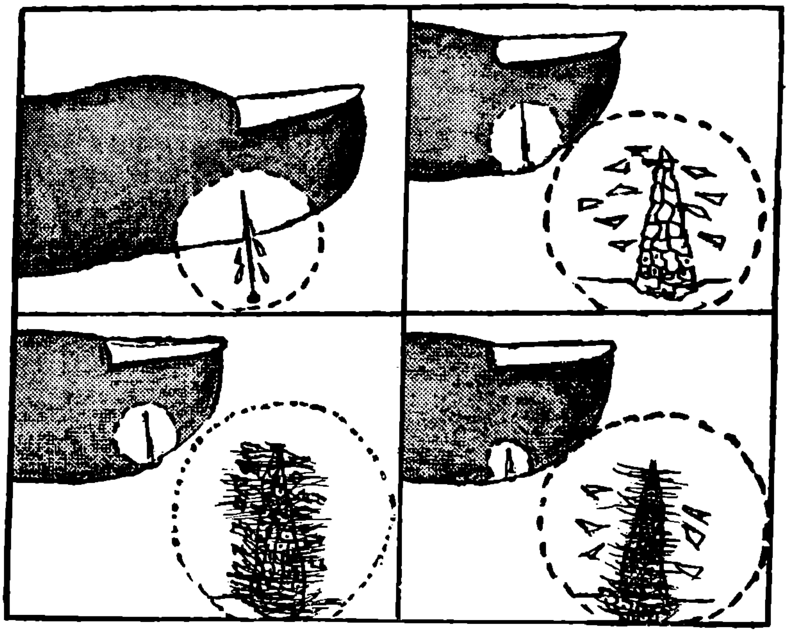

कीटाणुओं को नष्ट कर डालते हैं। इन प्लेटलेट्स में एक और रासायनिक पदार्थ भी तो होता है। वह खून के रासायनिक पदार्थ के

1. प्लॉट लेट्स Plat lets

साथ मिलकर पतले धागों के समान परिवर्तित हो जाते है । ये धागे आडे-खडे, सीधे-तिरछे होकर घाव को भरने की कोशिश करते हैं । हम अक्सर यही देखते हैं न? जब शरीर की त्वचा कहीं कट जाती है, तब रक्त-प्रवाह होने लगता है, तभी पीत-श्वेत रंग का स्कंदित प्रोटीन का जालीनुमा आवरण रक्त कोशों को ढ़क लेता है जिससे रक्त थक्का बाँध लेता है। इस क्रिया को रक्त आतंच कहते हैं । इसी क्रिया के फलस्वरूप कुछ ही देर में रक्त का बाहर निकलना रुक जाता है । साधारण भाषामें इसे घाव भरना भी कहते हैं । जब हवा लगती है तब बाहर निकली हुई रक्त कोशिकाएँ सूखकर पपड़ी के समान जम जाती हैं । जब अन्दर का घाव बिल्कुल ठीक हो जाता है तब पपड़ी छूट जाती है । जब चोट लगती है तभी ऐसी व्यवस्था होती है । अर्थात् जालीनुमा पदार्थ तभी बनता है । सब समय ऐसी जालीनुमा चीज जमे तब तो बड़ा अनर्थ हो जाएगा । इसकी कल्पना तक हमारे लिए असह्य है, भयानक है । खून की नलियाँ इनके कारण बन्द हो जाएँगी और खून के बहाव में रुकावट होने के कारण हमारे प्राण भी उड़ जाएँगे । सब प्रकृति का यथोचित प्रबन्ध है, इसलिए विचित्र और अनोखा है । नियमित समय पर नियमित रूप से आवश्यक कार्य सब चलते रहते हैं ।"

गाँव के चौधरी साहब के मन में अचानक एक प्रश्न उठा जो निराधार न था । "ये जो तैरकर बहनेवालें प्लॉटलेट्स होते हैं उनको कैसे पता चलता है कि अमुक जगह पर ही घाव हुआ है । सकुचाते हुए उन्होंने पूछ ही दिया ।

वैद्यजी ने खुशी से कहा—"आपका प्रश्न एक दम युक्ति–युक्त है । यह शक उठना स्वाभाविक है । आपके इस प्रश्न से मुझे बड़ी खुशी हुई । मैं चाहता हूँ कि किसी को कोई संदेह न हो । यदि कोई सन्देह हो तुरंत पूछ लीजिए ।"

लाल रक्त कोशिकाएँ—Red Blood Corpuscels

श्वेत रक्त कोशिकाएँ—White Blood Corpuscels

हमारे शरीर की रक्त-नलिकाओं में यह प्रबन्ध बिल्कुल ही विचित्र है। वे प्लेटलेट्स साधारण परिस्थिति में बहते चले जाते हैं तब निष्क्रिय रहते हैं। जब वे घायल भाग के पास आते हैं तब इन में चेतना आ जाती है। इसके अलावा घायल भाग ऊबड़खाबड़ हो जाता है। रक्त के बहाव में भी अड़चन उत्पन्न होती है। ये प्लेटलेट्स जब उस भाग से टकराते हैं तब टूट जाते हैं। टूटते ही उनके अन्दर से रासायनिक पदार्थ छूटेकर बाहर निकलता है। वह रासायनिक पदार्थ खून में मिले रासायनिक पदार्थ के साथ मिलता है। तब जाली जैसा कुछ पदार्थ उत्पन्न होता है।"

चौधरी साहब को ये सब बातें जादू के समान लगी। उन्होंने आश्चर्य प्रकर किया—"वाह! क्या ही अद्भुत प्रबंध हैं।"

१८. कबंधों की कुशलता

"मेरे प्यारे गाँववासियो. अब मैं जो बताने जा रहा हूँ वह अत्यंत आश्चर्यजनक बात है। आप लोगों ने कथा बाँचते समय पंड़ितजी को कहते हुए सुना होगा कि कबंध नाम का कोई राक्षस था और उसका सिर नहीं था। उसका मुँह था लेकिन पेट में वह जिस किसी को देखता था हाथों से खींचकर पेट में निहित अपने मुँह में भर लेता था।"—कालूचंहजी ज़रा रुके।

"जी हाँ, जी हाँ! रामायण में है यह हमने कई बार सुना है कि वह बिना सिर का राक्षस था।" लोगों ने मिलकर एक ही स्वर में कहा।

वैद्य—"अच्छा, अच्छा! रामायण की कथा में या रामायण-काल में एक ही कबंध रहा न? उसका सिर नहीं था पर मुँह था, हाथ थे, पैर भी थे। लेकिन हमारे शरीर में कई कबंध हैं। हजारों, लाखों, करोड़ों कबंध। पर इन कबंधों के न हाथ हैं, न पैर, न ही और कोई अंग है। केवल शरीर होता है इनका। इतना ही नहीं, मुँह भी नहीं होता इनका। ऐसे ये कबंध खून के बहाव के साथ-साथ

चलते रहते हैं। बिना मुँह के, बिना किसी अंग के ये कबंध जब अनुभव करते हैं कि कोई बाहरी तत्व खून में प्रवेश कर गया, उसे तुरंत अपने अंदर ले लेते हैं। इस प्रकार बाहरी तत्व का अस्तित्व मिट जाता है। ऐसे कबंधों के बारे में क्या आपने कभी सुना या देखा है ? उस रामायण-काल के कबंध के तो कम से कम पेट और हाथ–पैर थे, इसलिए वह सबको पकड़कर खा जाता था। लेकित खून में रहने वाले कबंध बड़े मजेदार हैं न ? बिना किसी अंग के वे शत्रुओं को खा जाते हैं?"

पुजारी जी को यह बात छूमंतर जैसी लगी। उन्होंने पूछा–'जी वैद्यजी! आपने जो कहा उस पर विश्वास करना हमारे लिए जरा कठिन है। बिना पेटवाला कैसे कुछ खाकर पचा ले सकता है?'

वैद्यजी-'पुजारी जी, मैं अभी चित्र के द्वारा समझाकर आपका संदेह दूर करूँगा। अब परदे पर देखिए।'

सबने चित्र में देखा कि लाल रंगवाली कोई नदी बह रही है। वह तेज तो नहीं, धीरे-धीरे आगे बढ़ रही है और उसमें लाल लाल तथा सफ़ेद-सफेद गोल-गोल वस्तुएँ बह रही हैं। साथ साथ प्लेट लेट्स भी वह रहे हैं। देखते-देखते काले पोत की माला के समान, धब्बे के रूप में कीटाणुओं का दल सामने से आता हुआ नज़र आया। वह धब्बा भी धीरे-धीरे ही आ रहा था। वह दल अचानक श्वेत रक्त कोशिका से टकरा गया। तुरंत वह श्वेत रक्त कोशिका सजग हो गई। जिस भाग से कीटाणुओं का दल टकराया वह भाग अंगुली के समान लंबा होने लगा। फिर कीटाणुओं के दल को धीरे से उसने घेर लिया। उसके शरीर का दूसरा भाग भी उसे घेरने लगा। देखते-देखते कीटाणु-दल उसके शरीर में समा गया। अब बताइए ये श्वेत रक्त कोशिकाएँ कितनी चालाक हैं? उस कबंध में इन कबंधों के समान शक्ति नहीं थी। चित्र में देखिए कितनी सफाई से दिखाई दे रहा है कीटाणुदल श्वेत कोशिका के अन्दर।'

पुजारी जी ने कहा-'जी वैद्यजी, यह क्या आश्चर्य ? बिना हाथ, पैर, मुँह के ही वह शत्रुओं को खूबी से निगल जाती है ।"

सिपाही भी आश्चर्यचकित हुआ—"वैद्यजी, क्या इन श्वेत रक्त कोशिकाओं को ही आपने खून में रहने वाले सिपाही कहा था ? बिना बन्दूक, तलवार के ये इतनी सफाई से कैसे शत्रुओं का नाश करती हैं देखा ?' यह सचमुच आश्चर्य-जनक बात ही है ।

वैद्यजी—'लेकिन एक बात है । युद्ध में लगातार भाग लेते-लेते कभी कभी सिपाही थक भी तो जाते हैं । इसी तरह ये श्वेत रुधिर कोशिकाएँ भी शत्रुओं के साथ लड़ते-लड़ते शहीद हो जाती हैं । हमेशा समय एक समान थोड़े ही रहता है ? उदाहरण के लिए देखिए कभी कभी हमें फोड़े-फुंसी हो जाते हैं न ? उनमें से पीब बहने लगता है ? जानते हैं वह पीब क्या है ? शत्रुओं से लड़ते-लड़ते जो श्वेत रूधिर कोशिकाएँ वीर-गति को प्राप्त करती हैं, वे उनके मृत शरीर ही होते हैं ।'

चौधरी साहब ने शोक प्रकट किया-वह रामायण-काल का कबंध स्वार्थी था, पर हमारे शरीर में बसने वाले ये खून में बहने वाले कबंध बड़े त्यागी और निस्वार्थ हैं । हमें बचाने के लिए कीटाणुओं से लड़ते लड़ते प्राण त्याग देते हैं । हम लोगों को इन के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए । जिन्दगी भर इनका एहसान मानना चाहिए ।" कहते-कहते उनका कंठ रूँध गया ।

१९. सफ़ाई कर्मचारी

वैद्य-'आपका कहना बिल्कुल सच है । ये हमें बचाने के लिए अपनी कुर्बानी करती हैं । इसके अलावा इनका एक मुख्य काम और है-वह है सफाई करना । खून के साथ मिले अन्य अस्वच्छ पदार्थों को, मृत ऊतकों के अवशेषों को, अनावश्यक रासायनिक तत्वों को, आवश्यकता से अधिक मात्रा में पाए जानेवाले शर्करा को निगल कर, पचाकर, बाहर निकलनेवाली प्रदूषित चीजों को यथास्थान जमा कर

खून को स्वच्छ रखना ही इन श्वेत रुधिर कोशिकाओं का प्रमुख कार्य है। इस प्रकार इनकी सेवा हमारे लिए अत्यावश्यक और अनिवार्य है। इस सेवा के बिना हमारा जीना असंभव है। इन सैनिकों के बारे में तो मैंने बता ही दिया। और एक प्रकार के सिपाही भी हमारे खून में मौजूद हैं।''

२०. शूलधारी और भाले-बर्छी धारक सैनिक

सिपाही ने फिर प्रश्न किया-'अरे यह क्या? सेना में कई प्रकार हैं जैसे-प्यादे, घुड़सवार, हाथी, तोपखाना आदि। क्या उसी तरह हमारे शरीर में भी कई प्रकार की सेनाएँ और सैनिक हैं?' सिपाही के लिए एक से एक आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली बातें थी ये।

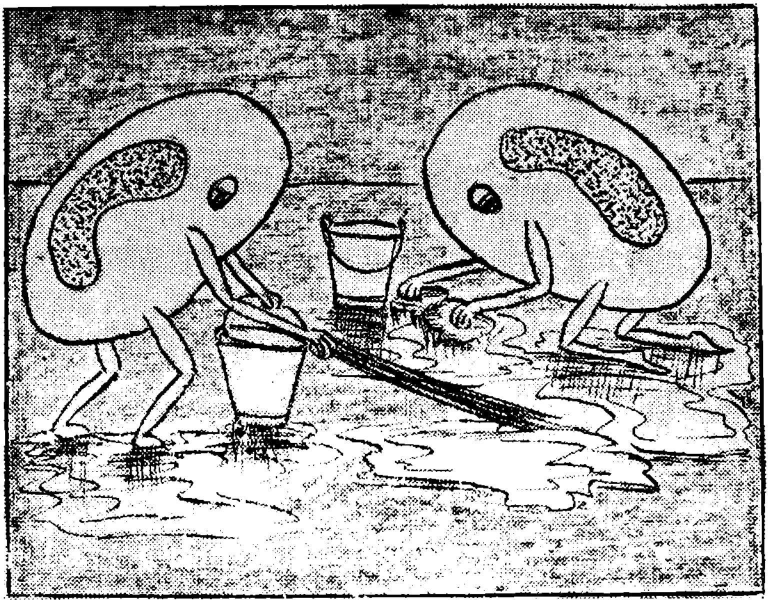

वैद्य-'हाँ, भाई सिपाही, कई प्रकार के सैनिक हमारे शरीर में हैं। मैं जिनके बारे में अभी कहने जा रहा हूँ वे शूलधारी और बर्छी-भाले धारी हैं।'

यह सुनते ही बैठे हुए लोगों में हलचल हुई। पुजारी जी ने पूछा-'यह क्या वैद्यजी, हमारे शरीर में, शूल, भाला, बर्छी ये सब लेकर सैनिक चलते हैं क्या ?

वैद्य-'पुजारी जी, हमारे शरीर के अन्दर भूल 'भाला आदि लेकर युन्न करनेवाले सिपाही तो नहीं हैं। लेकिन युद्ध करनेवाले सिपाही तो नहीं हैं। लेकिन 'कॉम्प्लिमेंट[1]' नाम से जिसे वैज्ञानिक पुकारते हैं, वह प्रोटीन हमारे खून में तैरता रहता है। इसका आकार छोटे कण के बराबर है। ऐसे प्रोटीन अर्थात् कॉम्प्लिमेंट जैसे ही रोग के कीटाणुओं को सामने पाते हैं वैसे ही उनकी खोल चीरकर, छेदकर, बेधकर उन्हें मार डालते हैं। इसलिए ही मैंने इनको शूल धारी कहा। पुराने जमाने में सैनिक भाले, बर्छी,शूल आदि लेकर इसी तरह चीर, फाड़कर शत्रुओं को मार ड़ालते थे। ये कॉम्प्लिमेंट उन्हीं सैनिकों के समान काम करते हैं। इनके द्वारा मारे गए कीटाणुओं को श्वेत रुधिर कोशिका रूपी कबंध निगलते हुए चले जाते हैं। इस प्रकार वे खून की सफाई कर अपना कर्तव्य अदा करते हैं।"

पुजारीजी की चिंता दूर हुई। उन्होंने कहा-"ऐसा कहिये। जी, मैं तो इतना डर गया कि क्या बताऊँ। जिस तरह काली जी शूल, भाला आदि लेकर दर्शन देती है उसी तरह के कुछ रूप मेरे सामने आये। मैं घबरा गया यदि इस प्रकार की घमासान लड़ाई अपने शरीर में चले तो फिर हम कहीं के नहीं रहेंगे।"

२१. अग्रगामी सैनिक

वैद्य-"मैंने अब तक आप लोगों को प्राथमिक चिकित्सा, कबंध, बर्छीवाले, शूलधारी, रासायनिक तत्व आदि के बारे में बताया है। ये सब केवल अग्रगामी सैनिक हैं। ये शरीर के अंदर प्रवेश करने की कोशिश करनेवाले कीटाणु, अभी-अभी प्रविष्ट हुए कीटाणु आदि

कॉम्प्लिमेंट - Complement

को नष्ट करते हैं। इन्हीं सैनिकों के कारण हम बीमारी से बच पाते हैं तथा बीमारी एक हद तक फैलने से भी रुकती है। इन सब प्रबंधों के बावजूद अर्थात् इन सैनिकों से नजर बचाकर कुछ कीटाणु अंदर घुस ही जाते हैं। फिर अपनी–अपनी सुविधा के अनुसार किसी खास अंग में जमकर बस जाते हैं, और वहीं वंशवृद्धि करने लगते हैं। तब हम क्या करेंगे ? क्या इसके लिये भी प्रकृति ने कुछ प्रबंध कर रखा है ? हाँ, हाँ, अवश्य है। ऐसी परिस्थिति से भी हमें बचाती है प्रकृति माता।"

"सिपाही ने दो महायुद्ध देखे हैं, वे अनुभवी हैं। उनको तो अवश्य मालुम होगा कि अग्रगामी सेना की टुकड़ी शत्रुओं से नष्ट हो जाती है तो युद्ध वहीं बन्द नहीं हो जाता। जब तक विजय नहीं प्राप्त होती है तब तक एक के बाद एक सेना समुद्र में उठनेवाली लहरों के समान भेजी जाती है लड़ने के लिये। क्यों सिपाही जी ऐसा ही होता है न ? मैंने तो केवल सुना पढ़ा है, पर आपने युद्ध में भाग लेकर अनुभव किया है।"

सिपाही "जी हाँ, जी हाँ ! वैसा ही होता है। आपने कहा न लहरों के समान, उसी तरह एक के बाद एक सेना की टुकड़ी को भेजते ही रहते हैं। आपने अभी कहा-केवल मैंने सुना है। पर ऐसा, सुन्दर ढंग से आपने बताया कि लगता है आप युद्ध के समय जाकर देख आये।"

वैद्य "हाँ, हाँ गया था। कहना भूल गया। दूसरे महायुद्ध में मैं अस्वस्थ, घायल सिपाहियों के उपचार के लिये मोर्चे पर था। तब थोडा-थोडा मुझे इन सब बातों के बारे में पता चला। लेकिन आपके समान मुझे कोई व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ।"

सिपाही ने तुरंत सीधे सावधान खड़े सलामी (सेल्यूट[1]) दी। फिर अपनी जगह तन कर बैठ गया।

---

1. सेल्यूट–फॉजी ढंग से सलामी देना

वैद्य "आधुनिक युद्ध-विधि के अनुसार ही हमारे शरीर में भी अग्रगामी सैनिक शत्रुओं को हराकर उन्हें मार डालते हैं। मान लीजिये दो एक शत्रु अर्थात् कीटाणु अन्दर बचकर घुस गये तो परिवार वढ़ाने लग जाते हैं जल्दी-जल्दी। इस परिस्थिति का सामना करने हमारे अन्दर एक खास सेना तैयार की जाती है। मालूम है इस सेना का क्या नाम है ? 'श्वेत सेना'।"

फिर बैठे हुये लोगों के बीच हलचल मची। वे लोग आपस में कुछ कहकर फुसफुसाने लगे। यह नाम उनके लिये अजीब था।

२२. श्वेत सेना

"अरे यह क्या ? रूस की वीर सेना को लाल सेना [1] कहते हुये सुना है। पर श्वेत सेना का नाम तक हमने नहीं सुना। क्या यह सेना भी उतनी ही कुशल है ?" चौधरी ने पूछा।

वैद्य "हाँ चौधरीजी। हमारे अन्दर की श्वेत सेना रुस की लाल सेना से किसी भी बात में, किसी भी हालत में पीछे नहीं है।"

"हमारी शैशवावस्था से अब तक हम पर पता नहीं कितने रोगों का आक्रमण हुआ होगा। हमें उनसे कितनी तकलीफ हुई होगी। इस श्वेत सेना ने उन रोग रूपी शत्रुओं पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की है। हमारा जीवित रहना ही इसका एक मात्र सबूत है। यदि वे श्वेत सेना के सैनिक शत्रुओं से हार गये हो तो तो आज हमारा आपका यहाँ एकसाथ बैठना नामुमकिन था। हमारा काम श्वेत सैनिकों की पराजय के साथ ही तमाम हो गया होता।

मुखिया चौधरी साहब ने इस बात को मानते हुये कहा— "हाँ, वैद्यजी, आपका कहना बिल्कुल ठीक है। मुझे ही ले लीजिये।

---

2. लाल सेना–RED ARMY

चेचक हुआ था मुझे, बुखार जुकाम देखा है मैंने, पेट की बीमारियों से भी पीड़ित था कभी। इन सबसे बचकर आज मैं जिन्दा जो हूँ तो उसका कारण यही होना चाहिए। लेकिन मुझे आज तक पता ही नहीं था।"

वैद्य-'इतनी सारी बीमारियों से हम बचकर बाहर निकलते हैं तो उसके पीछे श्वेत सेना की कृपा ही छिपी है।"

'श्वेत सेना के पैदा होने के कई स्थान, ठहरने या बसने के स्थान हमारे शरीर में कई हैं। पहले हम देखेंगे कि ये श्वेत-सैनिक कहाँ उत्पन्न होते हैं। परदे पर चित्र दिखाऊँगा। खाली सुनने से, देखना अधिक लाभकारी होगा।' -इतना कहते हुए वैद्यजी ने परदे पर चित्र दिखाना शुरू किया।

२३. श्वेत सेना का जन्म - स्थान

चित्र परदे पर दिखाई देने लगा। एक हड्डी बीच से तोड़कर विभाजित की गई थी। उसके भीतर का भाग खोखला-सा था। बाहर का भाग हड्डी का कठोर होता है, पर अंदर का ऐसा न होकर कोमल होता है उसकी तुलना में। उस भाग को दिखाते हुए वैद्यजी ने कहा—'यह कठोर हड्डी का कोमल अन्दरूनी (भीतरी) भाग है। यहीं पर हड्डियों का जीव तत्व बसा करता है! इसी स्थान पर श्वेत सैनिक पैदा होते हैं। खास तौर पर खोपड़ी की हड्डी, वक्षस्थल की हड्डियाँ, रीढ़ की हड्डी आदि के बीच के भाग में उत्पन्न होकर खून, लसीका आदि के साथ बहकर पूरे शरीर में फैल जाते है। इन श्वेत सैनिकों का काम शरीर की रक्षा करना है। अब इनके कार्य-स्थानों को चित्र में दिखाकर स्पष्ट करता हूँ।

ये देखिये, ये ही खून की नलियाँ हैं। ये नलियाँ हृदय से निकलते समय बड़ी रहती हैं फिर छोटी-छोटी नलियों में विभाजित होकर अंत में केश के समान बहुत छोटी-छोटी बनकर ऊतकों [1] को

---

1. ऊतक Cell

घेर लेती हैं। इन नलियों को 'धमनियाँ' कहते हैं। इनमें बहनेवाले खून में जीवाणुओं के लिये पोषक तत्व होता है। जीवाणु यदि भोजन प्राप्त करते हैं तो उसे पचाने के लिये प्राणवायु भी चाहिये। धमनियों के द्वारा बहनेवाले खून में प्राणवायु भरे होने के कारण यह खून लाल होता है। इस प्रकार धमनियाँ खून के साथ पौष्टिक तत्व और प्राणवायु को लेकर हर जगह पहुँचाती हैं। अब आपको दिखाई देता है न ? खून कैसे एक दम लाल है ?''

वहाँ से वे खून की नलियाँ जैसे बँटकर प्रवाहित हुई वैसे वहाँ से वापस हृदय तक पहुँचती हैं। केश के समान दिखाई देनेवाली कुछ बड़ी होती हैं, फिर अंत में शरीर के हर भाग से वापस-आकर ऊपर की ओर चलने लगती हैं। हृदय के पास पहुँचते पहुँचते थे बड़ी हो जाती है। इत नलियों में ऊतकों द्वारा त्यागी गई गंदगी और उनके द्वारा बाहर छोड़ी जानेवाली कार्बन-डाई-आक्साइड़ आदि को वे नलियाँ लेकर हृदय में पहुँच जाती हैं। इन हृदय की ओर जानेवाली नलियों को देखिये। अब तक हमने हृदय से निकलकर आनेवाली नलियों को देखा। वे एक से अनेक में विभाजित होती जाती हैं। फिर वे ही अनेक से धीरे-धीरे एक बनकर हृदय की ओर बढ़ती हैं। इन नलियों में प्रवाहित खून में जीवाणुओं द्वारा त्यक्त गंदगी, और कार्बन-डाई-आक्साइड़ भरे होने के कारण यह अस्वच्छ हो जाता है। यह खून का चक्कर है। यह हृदय से ऊतकों तक शुद्ध रुप में पहुँचता है, पर वहाँ से हृदय की ओर वापस जाते समय अशुद्ध होकर जाता है। वह चक्कर का पूर्वार्द्ध रहा तो यह उसका उत्तरार्द्ध है। यह छोटी नलिकाओं से नलियों में बदलकर हृदय में दाहिने भाग में प्रवेश करता है। हृदय उस अशुद्ध रक्त को फेफड़ों में पहुँचा देता है। फेफडों में इसकी शुद्धि होती है। इस खून में मिले कार्बन-डाई-आक्साइड़ को फेफड़े ग्रहण कर लेते हैं। फिर वे फेफड़े प्राणवायु को खून के साथ मिलाकर उसे हृदय की ओर रवाना करा देते हैं। फेफड़ों से बहनेवाली खून की नलियाँ शुद्ध रक्त को हृदय में प्रवाहित करा देती हैं। वहाँ से नलिकाओं के

द्वारा शुद्ध रक्त शरीर के हर अंग में सारे सैनिकों को लेकर अपनी यात्रा आरंभ कर देता है। इस तरह खून का चक्र चलता ही रहता है। कभी वह आराम नहीं करता। मैं इसे चित्र द्वारा समझाता हूँ, ध्यान दीजिये।" बैद्यजी ने चित्र परदे पर दिखाकर समझाया।

२४. रक्त–नलियाँ

परदे पर मनुष्य शरीर का भीतरी भाग दृष्टिगोचर हुआ। उसमें रक्त की नलियों के समान कुछ दिखाई देरही थीं। लेकिन वे

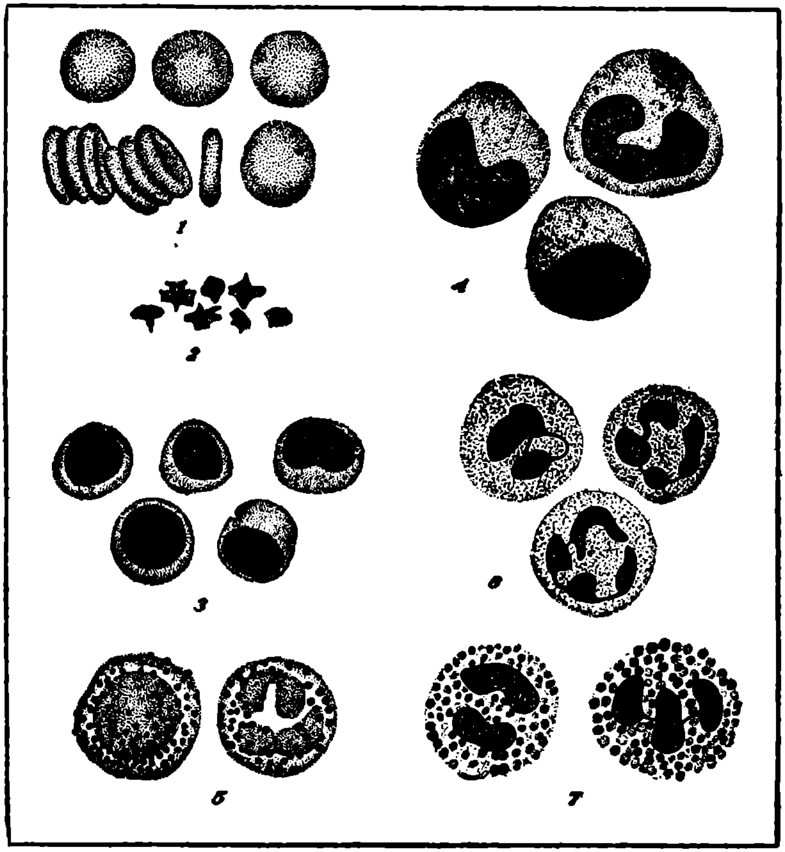

हृदय के साथ जुडी नहीं थीं। गले के नीचे बहती हुई रक्त की नलिका के साथ जुड़कर वहीं से आरंभ होती हुई जैसी दिखाई पडी। वह नली कई भागों में विभाजित होकर छाती, हाथ, पैर, गला, गर्दन, चेहरा आदि सभी भागों में व्याप्त हुई थी कहीं-कहीं तो बडी पतली थीं जाली के समान।"

खून की नलियों में और इन नलियों में एक अंतर था। इनमें छोटी-छोटी ग्रंथियों के समान जगह जगह पर कुछ दिखाई पड़ रही थीं। इसके अलावा गले के दोनों ओर, जहाँ (बाँहें) शरीर से जुडती हैं उस जगह अर्थात् काँखों में, तथा धड के साथ जहाँ पैर जुड़ते हैं, उस जगह बडी-बडी गाँठों के समान कुछ दिखाई दे रही थीं।

मैदान में उपस्थित लोगों ने चिल्ला कर कहा—"खून की नलियाँ, खून की नलियाँ।"

वैद्य "मेरे प्यारे भाइयो, आप जो चित्र में अब देख रहे हैं वे खून की नलियाँ नहीं है, मेदो वाहिनी नलियाँ हैं। मैं खून की नलियों को भी दिखाता हूँ। देखिये इन दोनों नलियों में क्या अंतर है? अब सबने फिर रक्त की नलियाँ देखीं। वे पूरे शरीर में व्याप्त होकर ऊतकों को पौष्टिक तत्व और प्राणवायु बाँटकर फिर वहाँ से अशुद्धियों को लेकर वापस पहुँचा रही थीं। पुनः उन्होंने मेदोवाहिनी (लसीका) नलियों को देखा।

२५. चर्मोदक या लसीका वाहिनियाँ

ये न धमनियों के समान थीं, न ही शिराओं के समान। इनका काम भी रक्त की नलियों के समान न होकर बिल्कुल अलग था। और ये न हृदय से निकलती हैं, न वापस हृदय में पहुँचती हैं ये ऊतकों के पास से बहुत महीन रूप में आरंभ होकर धीरे-धीरे बढ़कर, मिलकर यात्रा करती हैं और अंत में गले के नीचे दाहिना तरफ की बडी रक्त नली के साथ मिलकर एकाकार हो जाती है।

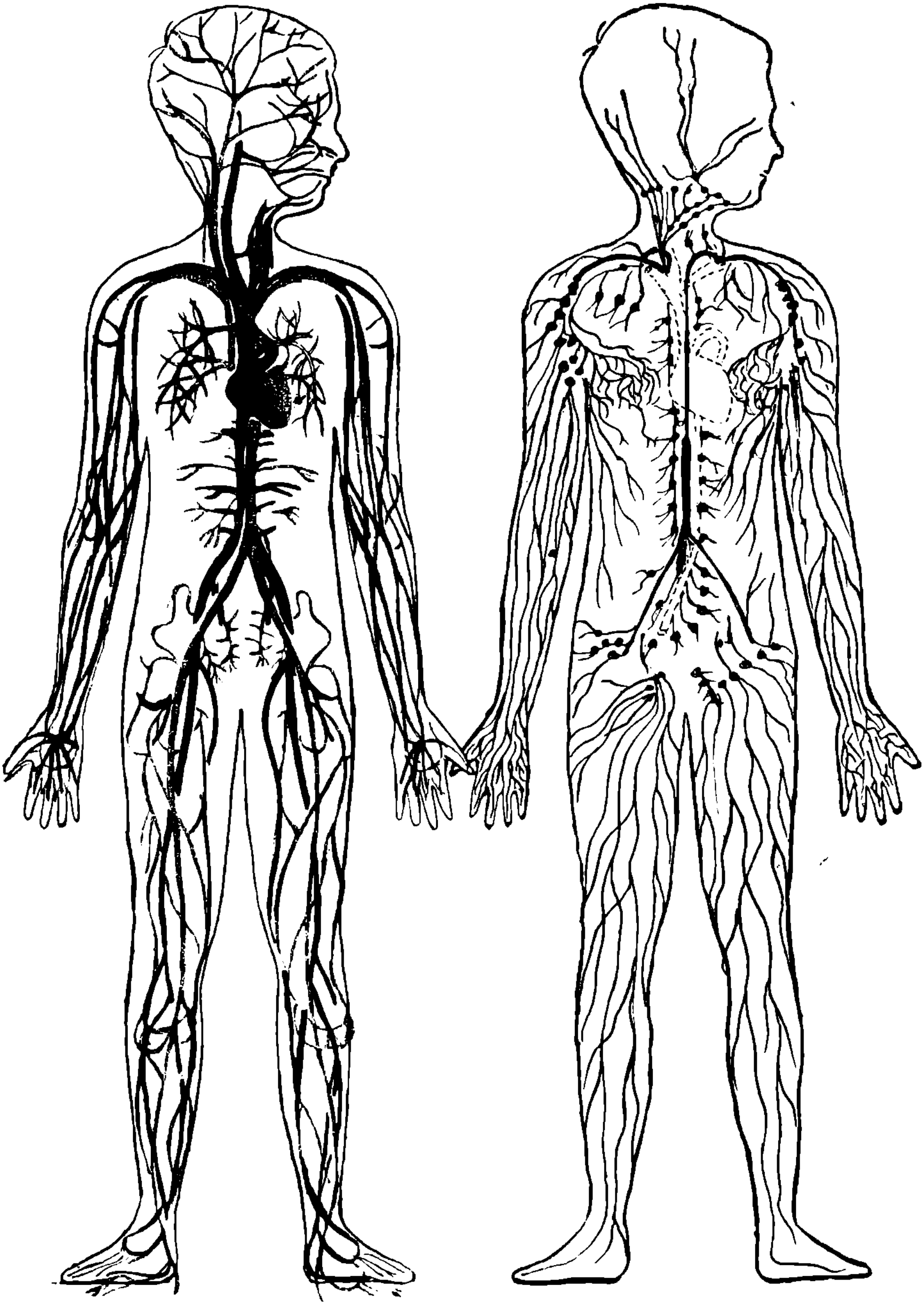

आप लोगों ने पहले ही देखा था कि इनमें जगह-जगह पर कुछ गाँठ जैसी वस्तुएँ मौजूद हैं जो खून की नलियों में पायी नहीं जाती हैं।

वैद्यजी ने कहा—"इसके अलावा एक और विशेष बात भी ध्यान देने लायक है। कंठ के दोनों ओर तथा काँखों में, फिर जहाँ जाँघें धड़ से मिलती हैं उन जगहों में गांठें कुछ बडी-बडी हैं। अब इन्हें ध्यान से अच्छी तरह देखिये।

गाँव के वैद्य ने पूछा "ये गाँठें क्यों बनी हैं? इनका क्या प्रयोजन है?

वैद्यजी ने यह कहकर समझाया कि (लसीका) मेदोवाहिनियों में जहाँ–तहाँ दिखाई देनेवाली गाँठ जैसी छोटी–छोठी वस्तुएँ सेना के कार्यालय हैं। इनको हम शाखाएँ मान सकते हैं। लेकिन गले के दोनों बाजू, काँख, जाँघ और कूल्हे का संधि-स्थान आदि जगहों में दिखाई देनेवाली बृहद् गाँठ सेना के मुख्य तथा केंद्रीय कार्यालय होते हैं।

सिपाही ने हर्ष प्रकट करते हुये पूछा—"अरे! जैसे सेना में शाखा कार्यालय और मुख्य केन्द्रीय कार्यालय हैं वैसे ही हमारे शरीर के भीतर भी कितने सुन्दर ढंग से सैनिकों की व्यवस्था है, शाखा–कार्यालय बने हैं, मुख्य केन्द्रीय कार्यालय बना है। क्या सृष्टि है! कितनी अनोखी बनावट है! हे ईश्वर, सब तेरी लीला है।"

वैद्यजी ने कहा "हाँ, सिपाही, हमारे शरीर में बसनेवाली श्वेत-सेना और श्वेत सैनिकों के बारे में मैंने कहा था न? वे सेनाएँ तथा सैनिक इन्ही शाखा-कार्यालयों और केन्द्रीय कार्यालयों में ठहरकर युद्ध की तैयारी करते रहते हैं। सदा वे सचेत और सजग रहा करते हैं।"

अच्छा अब मेदो बाहिनी की नलियों के बारे में देखेंगे। इनकी महीन जालीदार नलिकाएँ ऊतकों के पास से उद्भव होकर ऊतकों के आस-पास घुसे, चलते–फिरते कीटाणु, तथा उनके द्वारा त्यागी गई गन्दगी आदि को छानकर अपने साथ ले चलती हैं। ये जब यात्रा करती हैं अर्थात् बहकर जाती हैं तब कीटाणु तथा गंदगी शाखा कार्यालयों में पहुँच जाते हैं।

गाँब के वैद्यजी तुरंत सलझ गये और उन्होंने कहा–"अच्छा, अच्छा, इन शाखा-कार्यालयों में रहनेवाले सैनिक लसीका के साथ आये कीटाणुओं का काम तमाम कर डालते हैं। यही न वैद्यजी ?"

वैद्यजी ने कहा–"हाँ, हाँ, वैद्यजी। आप बहुत जल्दी समझ गए। अब शाखा कार्यालयों में रहनेवाले श्वेत-सैनिक चमत्कार दिखाना शुरू कर देते हैं। मान लीजिए कुछ शत्रु अर्थात् कीटाणु वहाँ से बचकर निकल गये। वे शत्रु लसीका की धाराओं के साथ साथ केन्द्रीय मुख्य कार्यालय पहुँचते हैं। वहाँ बड़ी संख्या में सेना तैनात रहती है। शत्रु अर्थात् कीटाणु और श्वेत-सैनिकों के बीच घमासान युद्ध चलता है यहाँ। तब सारे शत्रु वहाँ, उस समय मारे जाते हैं। लेकिन जब युद्ध चलता है तब ये कार्यालय जहाँ-जहाँ होते हैं वहाँ-वहाँ सूजन हो जाती है। उदाहरण के लिये गालों के नीचे गले में जो सूजन हो जाती है (गलसुआ)[1] उसे चेचक का एक प्रकार मानते हैं। पर असल में कीटाणुओं के साथ जब श्वेत सैनिक युद्ध करते हैं केन्द्रीय कार्यालय में, तभी यह सूजन होती है। जब गले में गालों के नीचे सूजन होती है तब उसके आस-पास के स्थान पर भी इसका असर पड़ता है। चेहरे भर में कभी-कभी हम सूजन देख सकते हैं। आपने भी ऐसा होते हुये कई बार देखा होगा।"

गाँव के वैद्य कहने लगे—"कभी-कभी बुखार होने पर काँख, घड़ के साथ जाँघों के संधि-स्थान आदि में सूजन होकर वे भाग

गलसुआ MUMPS

कड़े हो जाते हैं। उसे भी थो 'गाँठ पडना' कहा जाता है। इसका असली कारण श्वेत सैनिक और कीटाणुओं के बीच उस जगह चलने वाला घमासान युद्ध ही है क्या ?"

वैद्य बोलने लगे—"हाँ, वैद्यजी, इस तरह कुछ खास बीमारी के समय काँख आदि स्थानों पर गाँठ पड़ने का कारण उस स्थान पर श्वेत-सैनिक और कीटाणुओं के बीच चलनेवाला युद्ध ही होता है। अब तक हमलोगों ने हमारे शरीर को शत्रुओं से बचाने के लिये स्थापित सैनिक कार्यालय, वहाँ रहनेवाले श्वेत सैनिक आदि के बारे में जानकारी प्राप्त की। इतना सब जानने के बाद श्वेत-सैनिकों की युद्ध–विधि, इनके द्वारा उपयोग किये जानेवाले अस्त्र-शस्त्र आदि के बारे में भी ती जानना आतश्यक है ?"

सब लोगों ने एक स्वर में कहा—"हाँ, हमें इनके बारे में जानने की बड़ी इच्छा हो रही है, अवश्य बताइये।"

२७. पहरेदार सिपाही

हड्डियों के भीतर मज्जा में उत्पन्न होनेवाले श्वेत सैनिक खून और वसा के साथ तैरते हुए पूरे शरीर में फैल जाते हैं। इनमें अधिकतर काँख आदि संधि स्थलों में, गाँठों में रुककर वहीं रह जाते हैं। यहाँ देखिए, पेट में दाहिनी ओर स्थित प्लीहा [1] में ज्यादा तर श्वेत सैनिक रहकर शत्रु कीटाणुओं को मारकर हमारी रक्षा करते हैं।"

"श्वेत-सेना का एक बड़ा भाग वक्ष के ऊपरी भाग में, बीच में स्थित थैमस[2] नामक खास अंग में घुसकर वहीं रह जाता है। इस तरह वहाँ रुकने वालों में कुछ चिरंजीवी बनकर दस से बीस वर्ष तक जीनेवाले बन जाते हैं। इसी समय मेद की गाँठों में रहने वाले

प्लीहा तिल्ली SPLEEN

थैमस THYMES

अन्य श्वेत सैनिक दो ही सप्ताह या एक सप्ताह में मर जीनेवाले अल्प जीवी बन जाते है। लंबी उम्रवाले श्वेत सैनिक थैमस से बाहर निकलकर रक्त, लसीका आदि के ज़रिए शरीर के हर भाग में घूमते रहते हैं। इसीलिये यदि इनको पहरे पर तैनात सैनिक कहते हैं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। आजकल तो हर राष्ट्र की सेना में ऐसे सैनिक अवश्य हुआ करते हैं।" अपनी बात की पुष्टि के लिए वैद्यजी ने सिपाही से पूछा—"क्यों सिपाहीजी, सेना में पहरे का प्रबंध भी तो होता है न ?"

सिपाही ने वैद्यजी से कहा—"आपने भी तो मोर्चा, सेना आदि सब कुछ देखा है। ऐसा मुझ से पूछते हैं जैसे आपको सेना के बारे में कुछ पता ही नहीं। शत्रुओं की जगह, छिपे हुए स्थान आदि का पता लगाने के लिये ऐसे सैनिक सदा घूमते रहते हैं-सब जगह और हर कोने में।"

वैद्यजी यह सुनकर हँसने लगे। उन्होंने कहा-"प्यारे भाइयो, श्वेत सैनिकों का जन्म स्थान, इनका मुकाम, पहरे पर तैनात सैनिक आदि का विस्तारपूर्वक मैंने विवरण प्रस्तुत किया। इसके बाद अब मैं एक और मुख्य बात की जानकारी देने जा रहा हूँ। अब हमें यह जानना है कि ये श्वेत सैनिक खास-खास कीटाणुओं के साथ किस प्रकार युद्ध करते हैं। इसके पहले मैं यह जानना चाहता हूँ कि मैंने अब तक जो बातें बताई वे सब की समझ में आ गईं या नहीं। अगर समझ में नहीं आयीं तो फिर समझाऊँगा।"

चौधरी साहब झट से उठ खड़े हुए। 'जी, वैद्यजी आपने ता इतना अच्छा हमें समझाया जैसे बच्चों को समझाया जाता है। तिस पर भी किसी को मालुम नहीं हुआ तो वह परम मूर्ख होगा। आप चाहें तो मैं आपकी बातों को दोहराऊँगा। देखिए ठीक है कि नहीं?'

चौधरी साहब ने कहा - 'हमारे शरीर में श्वेत सैनिक हड्डियों के भीतरी भाग से (मज्जा से) पैदा होते हैं। वहाँ से खून और मेद

के द्वारा शरीर के हर कोने में फैलते हैं। कुछ सैनिक लसीका की धाराओं में बनी गाँठ में बस जाते हैं। अधिक संख्या में ये सैनिक प्लीहा (तिल्ली) में रहने लगते हैं। पर इन सब सैनिकों का जीवन काल बहुत छोटा होता है। ये केवल एक-दो सप्ताह तक ही जीते हैं। इस सेना का एक और भाग वक्षस्थल की हड्डियाँ के उपरीभाग के मध्य में स्थित थैमस नामक स्थान में बसने लगता है। इन सैनिकों का जीवन–काल दस वर्ष से लेकर बीस वर्ष तक का होता है। ऐसे सशक्त सैनिक खून का बहाव, मेद आदि, के द्वारा शरीर के कोने-कोने तक घूम आते हैं। इन्हें हम पहरे पर तैनात सैनिक भी कह सकते हैं।" एक ही साँस में इतना सारा कहने के बाद चौधरी जीने वैद्यजी को देखकर पूछा–'जी, मैंने सारी बातें ठीक-ठीक बताई हैं न ?"

वैद्यजी—'सुन्दर, अति सुन्दर! भाइयो! आपके मुखिया साहब की स्मृति कितनी प्रबल हैं! बुद्धि कितनी तीक्ष्ण है! मैंने केवल एक बार समझाया। लेकिन उन्होंने कितनी सफाई से बता दिया बिना किसी भूल के! मैं उनकी प्रशंसा जितनी भी करूं थोड़ी ही होगी!

जब वैद्यजी ने चौधरी को सराहा तब सारे गाँव के लोग बड़े ही खुश हुए। ताली बजाकर उन्होंने अपनी खुशी प्रकट की।

वैद्यजी ने फिर शुरू किया–'भाइयों! श्वेत सैनिकों का जन्म-स्थान, प्रशिक्षण-केन्द्र, जीवन काल आदि के बारे में मैंने बताया और आप लोग भी समझ गए। अब मैं चिरजीवी श्वेत सैनिकों और अल्पजीवी श्वेत सैनिकों की जिम्मेदारियाँ उनके युद्ध करने का ढंग आदि के बारे में बताना चाहता हूँ। आप लोग थक तो नहीं गए ?

'नहीं, नहीं हमें सुनने और समझने में बड़ा मज़ा आता हैं। आप अवश्य बताइए। गाँव वालों ने अपनी जिज्ञासा प्रकट की।

२८. युद्ध–विधि

'हमारे शरीर में कई कीटाणु प्रवेश करते हैं। उनके कारण कई रोगों के उत्पन्न होने की संभावना हो जाती है। ऐसे अंदर घुसनेवाले कीटाणुओं को अग्रगामी सेना के सैनिक (कबंध) प्लेट लेटस में निहित रासायनिक पदार्थ, शूल धारी, बर्छीधारी सैनिक, इनके अलावा खून में पाए जानेवाले रासायनिक तत्व, प्रोटीन आदि मिलकर या अलग–अलग रहकर मार डालते हैं। इन सबके सहारे कीटाणु नष्ट हो गए तो हमें रोग का बिल्कुल अनुभव भी नहीं होगा। यह भी हमें पता नहीं चलेगा कि रोग का आक्रमण हम पर हुआ था। हाँ, पर ज़रा सा जी उजड़ा-उजड़ा सा रहेगा।

यह बात गाँव के वैद्य की समझ में जल्दी आ गई। उन्होंने कहा–'हाँ, हाँ, मैं बताऊँ कब ? कभी-कभी हमारा शरीर बहुत हल्का गरम हो जाता है। हाथ-पैर और सिर में थोड़ा दर्द जैसा लगता है। थकान का अनुभव होता है। इन सबका कारण यही होना चाहिए कि हमारे शरीर में श्वेत सैनिक या उपर्युक्त चीजों में से किसी एक के साथ कीटाणुओं की लड़ाई हो रही है। यही है न बात वैद्यजी ?"

कालूचन्द को बड़ा आश्चर्य हुआ। क्योंकि उस गाँव के लोग इतने तेज थे कि तुरंत समझ जाते थे। उन्होंने हँसते हुए जवाब दिया-"हाँ, जब हमारे शरीर पर बाहरी कीटाणुओं का आक्रमण होता है तब जरा-सी तकलीफ होती है। आपने जैसा कहा, सिर और हाथ पैरों में दर्द, थकान, हल्की गर्मी आदि का अनुभव अवश्य होता है। कभी-कभी कुछ कीटाणु इस सुरक्षा-चक्र से बचकर अग्रगामी सेना को हराकर अपनी शक्ति और परिवार की वृद्धि करने लग जाते हैं। तभी हमें बीमारी लग जाती है। एसी बीमारी कुछ खास प्रकार के कीटाणुओं के असर से उत्पन्न खास रोग होगा। ऐसी परिस्थिति में इन खास प्रकार के कीटाणुओं को नष्ट करने का काम श्वेत सैनिक ही करते हैं।

२९. मल्ल युद्ध

"लंबी उम्र जीनेवाले श्वेत सैनिक, जो पहरेदार हैं वे शरीर के हर कोने को छान मारते हैं। वे ऊतकों के बगल से होकर चलते हैं। उस समय किसी खास रोग को उत्पन्न करनेवाले कीटाणुओं से उनकी मुलाकात होती है। तुरंत श्वेत सैनिक उन कीटाणुओं के गले में हाथ डालकर उनसे कुश्ती लडने लगते हैं।" वैद्यजी ने कहा।

इन शब्दों को सुनते ही पहलवान खड़े होकर पूछने लगा- "जी, आपने क्या कहा ? श्वेत सैनिकों के न हाथ होते हैं न पैर। वे बिना हाथ-पैर के कैसे कीटाणुओं से मल्लयुद्ध कर सकते हैं ? जरा स्पष्ट रुप से हमें समझा इयेगा।" पहलवान की प्रार्थना से गांव वाले सब प्रसन्न हुए।

वैद्यजी ने कहा-"पहलवान साहब, मैं अवश्य समझाऊँगा। आप लोगों का उत्साह देखकर मुझे बेहद खुशी हो रही है। यह बात सच है कि बिना हाथ-पैर के ही ये श्वेत सैनिक कीटाणुओं से उलझ पडते हैं। अब यह बताने जा रहा हूँ कि वे किस ढ़ंग से लडते हैं।"

३०. तरह–तरह के रुप

वैद्यजी ने परदे पर कुछ चित्र दिखाये। सब लोग परदे की ओर ध्यान से देखने लगे। परदे पर तश्तरियों के समान कुछ चित्र दिखाई देने लगे। उनमें बीज जैसे कुछ धब्बे भी मैजूद थे।

वैद्यजी ने समझाना शुरू किया-"परदे पर कुछ बीज के समान दिखाई दे रहे हैं न ? उन्हें देखिए। उनका आकार भी देखिए। कोई करेले के बीज जैसा है तो कोई तरोई के। और कोई ककड़ी के बीज की तरह है तो कोई सेम के बीज जैसा। सभी के रूप भिन्न भिन्न हैं। उदाहरण के लिए करेले के बीज को लीजिए। उसका

ऊपरी भाग बड़ा खुरदरा होता है। छूने से भी उसका ऊबड़-खाबड़ होना अच्छी तरह पता चलता है। सभी करेले के बीज ऐसे ही होते हैं। इसी तरह एक खास प्रकार के रोग को उत्पन्न करनेवाले सब कीटाणु रूप में एक जैसे होते हैं। यही इनकी खासियत है। इनके शरीर पर भी इसी तरह खुरदरापन और शिकन है।"

परदे पर एक छोटे बिन्दु के समान दिखाई दे रहे धब्बे को बड़ा करके दिखाया गया। हज़ारों गुना बडा करने पर ही इसे अच्छी तरह देख सके। जब एक कीटाणु को इस तरह कई हजार गुना बढ़ाकर दिखाया गया तब उसके शरीर पर करेले के बीज के समान ही शिकन और खुरदरापन दिखाई देने लगा। कई प्रकार की गाँठें, दरारें, शिकन सब उनपर मौजूद थे। उस दल के सभी कीटाणुओं का आकार इसी तरह था। इस तरह एक ही दल के कई कीटाणुओं के आकार को दिखाने के बाद दूसरे प्रकार के कीटाणुओं के रूप परदे पर दिखाई देने लगे। उनके शरीर को लोगों ने देखा।

उन कीटाणुओं पर भी कुछ खुरदरापन था। पर वे पहले प्रकार के कीटाणुओं से बिल्कुल अलग थे। उनके आकार में बहुत अंतर था। वे इतने छोटे होते हैं कि हमें यह अंतर पता ही नहीं चलता, और न इनको वैसे हम देख भी सकते हैं। सूक्ष्म दर्शी के सहारे ही ये कीटाणु दिखाई पड़ सकते हैं।

इन सबको परदे पर दिखाकर वैद्य कालूचंद ने कहा-'अब समझ में आया? इन बारीक कीटाणुओं के शरीर का आकार और उनके ऊपर का खुरदरापन, दरारों आदि कैसे हैं?

चौधरी साहब ये अपना आश्चर्य प्रकट किया "क्या ही अनोखा! इतने बारीक कीटाणु और इनके शरीर पर इतनी भिन्नता!"

वैद्यजी ने कहा-'केवल कीटाणुओ में ही नहीं उनके द्वारा त्यागी जानेवाली गन्दगी में भी भिन्नता होती हैं। अब हम देखेंगे कि श्वेत

पहरेदार सैनिक और कीटाणुओं के बीच किस तरह युद्ध होता है। अब इन श्वेत सैनिकों के शरीर पर भी इसी प्रकार ऊबड़-खाबड़ भाग हुआ करते हैं। वे कीटाणुओं को देखते ही उन्हें गले लगाकर अपने शरीर के ऊबड़-खाबड़ भागों को उनके शरीर के ऊबड़-खाबड़ भागों के साथ मिलाकर बैठा लेते हैं। इस क्रिया को समझाने के लिए और एक उदाहरण देता हूँ।"

३१. ताला और चाबी

"हर ताले की अपनी चाबी होती है। दूसरी किसी चाबी से एक खास प्रकार का ताला खुल नहीं सकता। हमने अक्सर यह देखा है कि किसी ताले की चाभी खो जाती है तो उसे तुड़वा डालते हैं। अब हमें सोचना चाहिए कि क्यों ऐसा होता है।" वैद्यजी ने कहा।

उन्होंने आगे कहा–"सभी तालों के आदर की बनावट कुछ खास तरह की होती है और अलग-अलग प्रकार की होती है। उनकी अपनी चाबियों की बनावट भी उनके तालों के अनुकूल होती है। तालों के भीतर दाँतों के समान कुछ लिवर होते हैं। उनकी चाबियों में उसी तरह के खास दाँतों जैसी बनावट होती है जो उनके ताले के अंदर जाकर ठीक-ठीक फँस जाएँ। इस तरह ताले में जब चाबी अच्छी तरह बैठ जाती है तब घुमाए जाने पर ताला खुलता है या बन्द होता है। ताले में बैठने लायक बनावट न होने पर वह चाबी अन्दर ठीक-ठीक नहीं बैठती और घुमाएँ जाने पर ताला भी नहीं खुलता।"

"जिस तरह हर एक ताले की अपनी चाबी होती है, उसी तरह किसी खास प्रकार के कीटाणुओं के शरीर के ऊपर की बनावट में बैठ जाने लायक बनावटवाले श्वेत सैनिक शरीर में होते हैं। ऐसे खास सफेद सैनिक, खास प्रकार के कीटाणुओं को पाते हैं तो उन्हें कसकर पकड़ लेते हैं और निष्क्रिय बना डालते हैं। उन कीटाणुओं द्वारा विसर्जित गंदगी की भी, जो विषैली होती है, यही हालत होती है।"

लोगों का शक मिट गया और उनको तृप्ति मिली । पहलवान ने अपने गाँव वालों की ओर से कहा—"जी, वैद्यजी, हमें पहले यह सोचकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि बिना हाथ-पैर के श्वेत सैनिक किस तरह कीटाणुओं के साथ मल्लयुद्ध करते हैं । पर अब हम सब अच्छी तरह समझ गये कि ये श्वेत-सैनिक किस तरह शत्रुओं से भिड़कर उन्हें पछाड़ देते हैं ।"

३२. जोश में आना और बढ़ना

वैद्यजी ने आगे कहा—"मैंने शुरू में ही आप लोगों से कहा था कि रोग के कीटाणु किस तरह बहुत जल्दी संख्या में बढ़ते जाते हैं । अब यह शक उठना स्वाभाविक है कि अल्प संख्यक श्वेत सैनिक कैसे बहु संख्यक कीटाणुओं को हराते हैं ?"

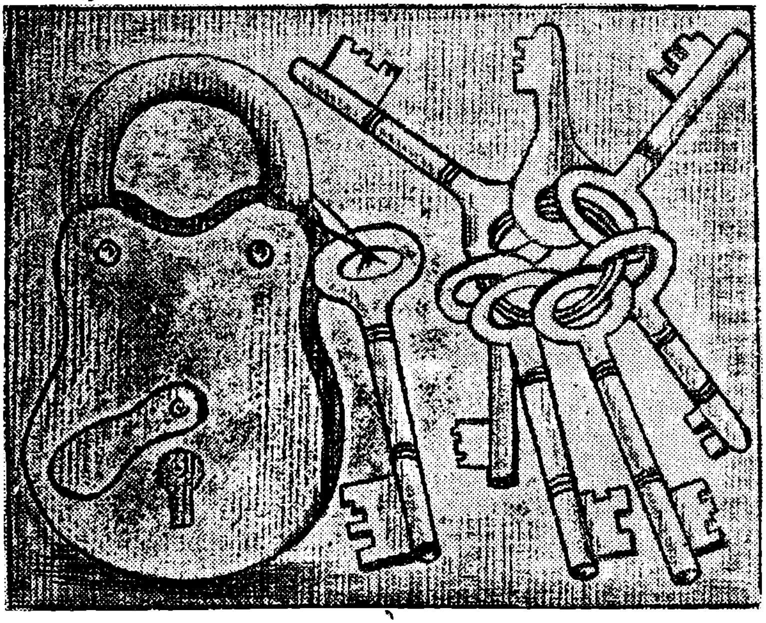

"करोडों की संख्या से बढ़ते हुए कीटाणुओं को नष्ट करने का बड़ा विचित्र प्रबंध है हमारे शरीर में जब खास कीटाणुओं को देखते

हैं श्वेत सैनिक तुरंत उन्हें जकड़ लेते हैं। तब उनमें एक जोश[1] उत्पन्न होता है। ये श्वेत सैनिक लंबी उम्र वाले होते हैं। जब कीटाणुओं को गले लगाते ही इनके अंदर जोश पैदा होता है तब इनकी संख्या भी बढ़ने लगती है। यह काम अधिक शीघ्रता से होता है। शत्रुओं को नष्ट करने के लिये लंबी उम्र तक जीनेवाले श्वेत सैनिक अपना परिवार बढ़ाने के अलावा और भी कुछ करते हैं।

३३. प्रतिपिंड या प्रतिकाय

"जब शत्रु (कीटाणु) शरीर के अंदर घुस पड़ते हैं तब दीर्घ जीवी श्वेत सैनिक इस खबर की सूचना आमाशय, मेद-धारा आदि में रहनेवाले अल्पजीवी श्वेत सैनिकों के पास भेजते हैं। इस खबर के पहुँचते ही लसीका की गाँठों में प्लीहा में रहनेवाले सैनिक, शत्रु कीटाणुओं और उनके द्वारा छोड़े जानेवाले जहरीले त्यक्त पदार्थों को नष्ट करने के लिये प्रतिपिंड[2] या अस्त्रों को त्वरित गति से बनाकर खून, लसीका आदि की धारओं के साथ भेज देते हैं। ये प्रतिपिंड तीव्रता से उत्पन्न होते हैं। अत: चाहे जितने भी कीटाणु हों या उनके द्वारा छोडा हुआ जहरीला पदार्थ हो उनका आलिंगन कर या छितरा कर उन्हें नष्ट कर डालते हैं। इस प्रकार युद्ध में मरे शवों को खून में पाये जाने वाले कबन्ध निगलते जाते हैं और उनके द्वारा उत्पन्न अशुद्धियों को भी खा डालते हैं। इस तरह खून खराब होने से बचता है। अंतिम युद्ध में रोग के कीटाणुओं की पराजय के उपलक्ष्य में रोग तीव्र से तीव्रतर होकर मरीज को सताने जगता है।

"इसके कुछ लक्षण भी हैं। अब आगे सुन लीजिये।"

"उदाहरण के लिये युद्ध का परिणाम श्वेत सैनिक और प्रतिपिंडों के पक्ष में रहेगा तो मरीज बच जायेगा। समय सदा

---

1. जोश TRIGGER
2. प्रतिपिंड ANTI BODIES

न्याय का साथ नहीं देता। संसार में भी हम यह देखते हैं कि कभी-कभी अन्याय न्याय को नीचा दिखा देता है। इसी तरह यदि रोग के कीटाणु जीत गये और श्वेत सैनिक हार गये तो बीमार व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

"किसी व्यक्ति के शरीर में खास प्रकार के कीटाणु प्रबल होकर युद्ध करके अंत में हार जाते हैं तो क्या प्रतिक्रिया होती है? इसके बारे में अब मैं आप लोगों को कुछ कहनेवाला हूँ।

३४. द्वितीय महायुद्ध की तैयारी

"प्रथम युद्ध में मान लीजिये श्वेत सैनिक जीत गये और कीटाणु हार गये तो उन श्वेत सैनिकों की संतान बीमारी के हटने के बाद भी उसके शरीर में मौजूद रहती है। यही नहीं, अल्पजीवी श्वेत सैनिकों द्वारा निर्मित हथियार और प्रतिपिंड खून की धारा में चिरकाल तक दूसरे युद्ध में लड़ने के लिये तैयार रहा करते हैं। इस कारण खास प्रकार के जो कीटाणु शरीर में प्रवेश कर रोग उत्पन्न कर, मुँह की खाकर फिर दुबारा शरीर में घुसेंगे तो निस्संदेह उन्हें पुनः मिट्टी में मिलना ही होगा।" वैद्यजी ने सफाई से कह दिया।

चौधरी साहब ने वैद्य जी से पूछा—"अच्छा, तब बात यह हुई कि पहली बार जो कीटाणु हमारे शरीर में प्रवेशकर किसी खास प्रकार का रोग उत्पन्न करते हैं और अल्पकाल में ही रोग दूर हो जाता है तो दूसरी बार वे अगर हमारे शरीर पर आक्रमण करने की कोशिश करेंगे तो अवश्य असफल हो जाएँगे।" "वैद्यजी, आपने जो कुछ कहा उसे ठीक-ठीक मैं समझ गया न?"

वैद्य "हाँ, बिल्कुल। आप लोगों की तीव्र बुद्धि से तो मैं सचमुच प्रभावित हूँ। किसी व्यक्ति को कोई खास बीमारी हो गई और वह कुछ दिनों के बाद स्वस्थ हो गया तो उस आदमी के शरीर में उस खास बीमारी को नष्ट करनेवाले श्वेत सैनिक, हथियार अर्थात् प्रतिकाय लंबे अर्से तक सतर्क और तैयार रहते हैं। इस कारण

फिर से वे कीटाणु, बीमारी उस व्यक्ति को बाँटना चाहें तो भी कोई फायदा नहीं होता है । उस व्यक्ति पर पुनः उस व्याधि का असर नहीं होगा ।"

"इस प्रकार एक व्यक्ति के शरीर में बीमारी के बाद उत्पन्न शक्ति को स्वयं 'प्राकृतिक रूप से उत्पन्न रोग से बचने की शक्ति' [1] कहते हैं वैज्ञानिक लोग । यह बात याद रखने लायक है कि इस प्रकार से उत्पन्न शक्ति एक व्यक्ति के शरीर में चिर काल तक उपस्थित रहती है ।"

"रोग से बचने की स्वतः उत्पन्न शक्ति चिर काल तक हमारे शरीर में मौजूद रहती है । फिर भी जीवन और मृत्यु के बीच जूझते हुए समय बिताना बडा कठिन है । रोग के आक्रमण से कई लोग मर जाते हैं । इन सबको देखते हुए वैज्ञानिकों ने भगीरथ प्रयत्न करके बीमारियों को नष्ट करने के तरीके खोजे, उन्होंने शोध कार्य किया ।

"चिकित्सा-क्षेत्र में अनुसंधान करनेवाले वैज्ञानिकों ने हमें परेशान करनेवाले रोगों के कारण खोज निकाले । इतना ही नहीं उन्होंने इन बातों पर भी प्रकाश डाला कि किसी खास रोग को उत्पन्न करने वाले कीटाणु हमारे शरीर पर आक्रमण करें तो हमारे शरीर में घटनेवाला युद्ध किस तरह का होता है और लड़ने वाले सैनिक कौन होते हैं, उनके अस्त्र-शस्त्र कैसे होते हैं । वैज्ञानिकों के अथक परिश्रम से थे सारी बातें हम लोगों की जानकारी में आईं ।"

"प्राचीन काल में अर्थात् कुछ वर्षों पूर्व यदि किसी को कोई बीमारी हो जाती तो उसका बचना-मरना उसके भाग्य पर निर्भर था । अधिकतर लोग बीमारी के कारण मर जाते थे । प्रकृति

प्राकृतिक रूप से उत्पन्न रोग से बचने की शक्ति NATURAL IMMUNITY

माता ने हमें कुछ साधन दिये हैं। वैज्ञानिकों ने इन साधनों के सहारे बीमारी को चंगा करने के तरीके खोजे। फिर किसी एक को कोई बीमारी लग जाती है तो उसे फैलने से रोकने के तरीके भी खोजे इन दोनों बातों में वे सफल रहें।"

"आप लोग भी इन बातों से परिचित हो जायें तो ये रोग कभी फैल न सकेंगे। एक से दूसरे को फिर सबको जो बीमारी लग जाती है उसे छूत की बीमारी या संक्रामक रोग कहते हैं। मान लीजिए कि गाँव में किसी को ऐसा रोग लग गया तो उसे फैलने से रोकना है। यदि आप लोगों को इसके तरीके मालुम होंगे तो बड़ी सुविधा होगी।"

चौधरी साहब को इसे जानने की बड़ी जल्दी थी। उन्होंने कहा—वैद्यजी, आप यदि हमें बताएँगे तो आपकी बड़ी कृपा होगी। हम लोग कभी आपका एहसान नहीं भूलेंगे। नीरोग रहना कौन नहीं चाहेगा ?"

३५. जैसे को तैसा या विषस्य विषमौषधम्

वैद्यजी ने उदाहरण देकर समझाना शुरू किया—"कभी-कभी चलते समय हमारे पाँवों में काँटे चुभ जाते हैं। उन्हें कैसे बाहर निकालते हैं कोई-कोई काँटे पूरी तरह भीतर नहीं धँसते ऊपर से दिखाई दें जाते हैं। उन्हें तो उंगलियों से पकड़कर खींचकर फेंक देते हैं। पर कोई-कोई इतने छोटे होते हैं कि चमडी के अन्दर धंसकर बैठ जाते हैं। उन्हें कैसे निकालते हैं?"

सबने एक साथ उत्तर दिया—"सूई या किसी नुकीले साधन से खोदकर निकालते हैं।"

वैद्यजी—"हाँ, अब काँटा भी तो नुकीला है। उसे निकालने के लिऐ भी हमें वैसे हो नुकीली चीज चाहिए नहीं तो काँटा निकलेगा ही नहीं। अन्दर जाकर कुछ खराबी उत्पन्न करेगा। इसी तरह किसी

संक्रामक रोग से बचने के लिए उसी बीमारी को उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं या उन कीटाणुओं द्वारा विसर्जित विषैले पदार्थों को स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कराते हैं ।

यह बात लोगों को बिल्कुल अच्छी नहीं लगी । उन्होंने पूछा–"यह क्या ? स्वस्थ शरीर में कीटाणुओं को प्रवेश कराना क्या पागलपन नहीं है । यह तो आ बैल मुझे मार वाली बात हो गई । फिर तो वह अच्छा-खासा आदमी बीमार हो जाएगा । यह रोकना हुआ कि बढ़ाना ?"

वैद्यजी ने हाथ से इशारा कर उन्हें शांत कराया । फिर कहना शुरू किया—"जैसे आप लोग सोचते हैं वैसे यह 'आ बैल मुझे मार' वाली बात नहीं है । बीमारी के लग जाने के बाद उसके ठीक होने के लिए उपचार करने की जगह उसे आने के पहले ही रोकना होता है यह । यदि कोई रोग के कीटाणु अग्रगामी सैनिकों को हराकर शरीर में बोलबाला बढ़ा लेते हैं तो क्या होगा ? हमें अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे । मैंने पहले ही इस बात को समझा दिया था ।"

लोग उनकी बातों से सहमत थे ।

वैद्यजी बोले–"अब चाहे बीमारी प्राकृतिक ढंग से लगे या कृत्रिम ढंग से, शरीर में उस बीमारी को दूर करने का प्रबंध होता

ही रहता है। रोग के कीटाणुओं से युद्ध करने की तैयारी भी होती रहती है। इसके लिये यदि हम नकली ढंग से कीटाणुओं को शरीर के अंदर प्रवेश कराते हैं तो भी वे श्वेत सैनिक उन कीटाणुओं से लड़कर उन्हें मार डालते हैं। फिर मान लीजिए हमारे शरीर में प्राकृतिक ढंग से रोग का प्रकोप हो तो उन सैनिकों को रोग से लड़ना कठिन नहीं होता। इसकारण रोग की तीव्रता से हमारा कोई नुकसान नहीं होता।"

गाँव के वैद्य ने कहा—"अच्छा, जिस प्रकार सिर के दर्द, पेट के दर्द आदि के लिये हम घर में दवा रखे रहते हैं उसी तरह पहले से ही हमारे शरीर के भीतर रोग के कीटाणुओं को नष्ट करने का प्रबंध होता रहता है, शरीर सब मुसीबतों का सामना करता रहता है।"

३६. कृत्रिम प्रतिरक्षण

वैद्य—"हाँ, इसी तरह हमारे शरीर में बाहरी कीटाणुओं का प्रवेश कराकर, उनके द्वारा विसर्जित जहरीली गंदगी को प्रविष्ट कराकर हमारे शरीर की शक्ति को बढ़ाना ही इस नकली तरीके का लक्ष्य है। इस नकली तरीके के कई प्रकार हैं। अब इसके बारे में समझाता हूँ।"

"नकली ढंग से शरीर में उत्पन्न कराये जानेवाली रोग-विरुद्ध शक्ति को" बनावटी रोग-रोक के तरीके कहते हैं वैज्ञानिक। इनके प्रकार के बारे में हम समझेंगे।

३७. जिंदे कीटाणुओं को शरीर में प्रविष्ट कराना

जिंदे कीटाणुओं को शरीर में प्रविष्ट कराना बनावटी ढंग का पहला तरीका है। जब किसी व्यक्ति को हैजा हो जाय तब उस बीमार व्यक्ति को लोगों से अलग कर उसकी चिकित्सा करते हैं। उस मरीज के आसपास बसने वालों को उस बीमारी से बचाने के

प्रतिरक्षण IMMUNIZATION

लिये, उस बीमारी को फैलने से रोकने के लिये हैजा के कुछ कीटाणुओं को उन लोगों के शरीर में सूई के द्वारा प्रवेश कराते हैं । आप लोगों को अब मुझे बताने की आवश्यकता नहीं होगी कि उन लोगों की क्या हालत होगी ।"

३८. कम वीर्य (बल) वाले कीटाणुओं को शरीर में प्रविष्ट कराना

"यह नकली ढंग का दूसरा तरीका है । इस तरीके में कीटाणुओं के वीर्य को जरा कम कर, उन्हें कमजोरी की हालत में शरीर में घुसाते हैं । कीटाणु प्राकृतिक रूप से शरीर में बसते हैं तो उनका वीर्य अधिक होता है । उन्हें पोषक तत्व शरीर से अच्छी तरह मिलते हैं । पर नकली ढंग से पाले जानेवाले कीटणु इस सुविधा से वंचित रह जाते हैं । इस कारण ये थोड़ें कमजोर रहते हैं । इनकी संतान पीढ़ी दर पीढ़ी कमजोर होती जाएँगी । इस प्रकार के कमजोर कीटाणुओं को कुछ बीमारियों में शरीर में प्रविष्ट कराते हैं ।"

३९. मृत कीटाणुओं को शरीर में प्रवेश कराना

"मृत कीटाणुओं को प्रविष्ट कराना तीसरा तरीका है । कुछ बीमारियों के कीटाणुओं को नकली पोषक तत्व देकर पाला जाता है । जब इनकी संख्या अत्यधिक बढ़ जाती है तब इन्हें उष्णता या रासायनिक तत्व की सहायता से मार देते हैं । इस तरीके से मारे गये कीटाणुओं का द्रव-रूप में सूई के द्वारा शरीर में प्रवेश कराते हैं । तपेदिक, हैजा आदि रोगों में यही तरीका अपनाया जाता है ।"

४०. कीटाणुओं द्वारा विसर्जित विष्पाक्त पदार्थों को शरीर में प्रविष्ट कराता :

"चौथा तरीका है—कीटाणुओं द्वारा विसर्जित विषाक्त पदार्थों का प्रयोग करना । कीटाणुओं को कृत्रिम पोषक तत्वों की सहायता से पालकर उनकी संख्या में काफी वृद्धि होते ही उनको हटाकर

उनके द्वारा विसर्जित विषाक्त पदार्थों को लेकर शरीर में प्रवेश करा कर शरीर के निरोधक तत्व को बढ़ाते हैं। कंठरोहिणी, टेटानस आदि रोगों के लिए उपर्युक्त यह तरीका अपनाया जाता है।"

४१. अप्रतिरोधकारी

"यह पाँचवा तरीका है। इसमें रोग उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं के द्वारा विसर्जित विषैले पदार्थ को पहले घोड़े के शरीर में प्रवेश कराते हैं। घोड़े के शरीर में उस रोग के कीटाणुओं की संख्या बढ़ने लगती है। उन्हें मारने के लिए 'प्रति काय' अत्यधिक संख्या में उत्पन्न होती हैं। तब उन प्रतिकायों को जमा कर कुछ खास रोगों को दूर किया जाता है। 'टेटानस, प्लेग, पैट के मरोड़न की बीमारी' आदि में निरोधक शक्ति के रूप में घोडों के शरीर से जमा किया प्रतिकाय ही काम आती है।"

"उपर्युक्त तरीकों के प्रयोग से शरीर में व्याप्त श्वेत सैनिक शात्रुओं को मारने के लिए बढ़ते जाएँगे। खास प्रकार के हथियारों का निर्माण होता है। इससे शरीर में प्रविष्ट कीटाणु और उनके द्वारा विसर्जित विषैले पदार्थ भी नष्ट किए जाते हैं, रोग के लगने पर उसे रोकने के सभी उपाय तैयार रहते हैं। इन सब कारणों से कृत्रिम तरीकों से उत्तेजित रोग कुछ सालों तक या कुछ महीनों तक शरीर पर आक्रमण कर तकलीफ़ नहीं पहुँचा पाते हैं।"

४२. बच्चों को सूइयों द्वारा निरोधक दवा

'बचपन में कई बीमारीयों से बच्चे परेशान हो जाते हैं। उस समय कृत्रित रोग निरोधक तरीकों को अपनाया जाता है। इसके कारण कई बीमारीयाँ लग ही नहीं पाती हैं। अब हम देखेंगे और

कण्ठरोहिणी DIPHTHERIA
रंजातु TITANESS
प्रतिकाय ANTIBODIES

समझेंगे कि बच्चों को कौन-कौन सी दवाइयाँ रोग-निरोध के लिए दी जाती हैं ।"

"क्षय रोग को रोकने के लिए बी.सी.जी. की सूई लगाई जाती है । चेचक के निरोध के लिए चेचक का टीका लगाया जाता है । चेचक का टीका बच्चे को पैदा इश के तीन महीने के अन्दर लगा देना ज़रूरी होता हैं । (चेचक के कई प्रकार हैं, चेचक का टीका लगने पर केवल चेचक से बच सकते हैं ने कि उसके और सब प्रकारों से (मातायों से इसके बाद डिप्थीरिया (कण्ठरोहिणी), कुकुर खाँसी (हूप्पिग कॉफ) अपस्मार रोग या मिरगी (fits) इन तीनों रोगों के

निरोध के लिए सूई द्वारा दवा को शरीर में प्रविष्ट कराते हैं । यह सूई बच्चों को दो बार दो - दो महीने के अंतर में दी जाती है । पोलियो (शिशुपक्षाटात) के निरोध्र के लिए कुछ खास दवा है जिसकी कुछ बूंदे मुँह में डाली जाती है । ये तीन बार दी जाती हैं तपेदिक (टाइफाइड) को रोकने के लिए भी सूई लगाते हैं । यह

एक साल के बच्चे को ही लगायी जाती है, उस से कम उम्रवाले बच्चे को नहीं "

" केवल बच्चों को नहों बडों को भी ऐसी सूइयाँ लगाई जाती हैं। किसी गाँव, वस्ती या शहर में हैजा या टाइफाइड से कोई पीडित हो और उन रोगों के फैलने की संभावना भी हो तब रोग निरोधक सूइयाँ लगाई जाती हैं। उत्सव त्यौहार आदि के समय. हाट, मेले आदि में जहाँ लोगों की भीड़ अधिक जमती है वहाँ बीमारियों को रोकने के लिए निरोधक सूइयाँ लगाई जाती हैं।

"किंतु हमें यह भी समझना जरुरी है कि संक्रामक रोग किस तरह फैलते हैं, और इन बीमारियों के लक्षण क्या होते हैं। यदि आपको बीमारियों के लक्षण पता चले तो उन्हें लगने के पहले ही रोक सकते हैं और फैलने से भी रोक सकते हैं। इसलिए मैं अब प्रत्येक संक्रामक रोग के लक्षण, फैलने के ढ़ंग, चिकित्सा, आने से पहले ही बरतनेवाली सावधानियाँ आदि के बारे में बताना चाहता हूँ।"

४३. फैलने के तरीके

"संक्रामक रोग कई तरह से फैलते हैं। कुछ संक्रामक रोग हवा के द्वारा फैलते हैं। कुछ रोग पानी और खाद्य पदार्थों के जरिए फैलते हैं। कुछ रोग कुछ खास कारणों से फैलते हैं।"

४४. हवा के द्वारा फैलनेवाले रोग

सर्दी, जुकाम, बुखार, एन्फ्लूयेंजा, चेचक, गलसुआ, कुकुर खाँसी, कंठ रोहिणी (डिप्थीरिया), क्षय, मसूरिका (लघुशीतला), छोटीचेचक आदि रोग हवा से फैलते हैं।

४५. भोजन और पानी के द्वारा फैलनेवाले रोग

दस्त, पेचिस, हैजा, तपेदिक (टाइफाइड़) पीलिया, पोलियो (शिशुपक्षाघात) आदि रोग भोजन और पानी के द्वारा फैलते हैं।

---

1. मसूरिका MEASLES
2. छोटी शीतला (मोतिया शीतला) CHICKEN POX

४६. अन्य तरीकों से फैलनेवाले रोग

कुछ कीटाणु कई रास्तों से, मई तरीकों से अंदर घुस जाते हैं।

उदाहरण के लिये क्षयरोग के कीटाणु साँस, दूध, आइसक्रीम, पेय पदार्थ, कुछ खाद्य पदार्थ आदि के द्वारा शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। कुछ तो त्वचा के द्वारा भी शरीर में घुस जाते हैं। क्षय रोग का असर, उसके शरीर में प्रवेश करने के तरीकों के अनुसार, भिन्न-भिन्न होता है। उसकी प्रतिक्रिया अलग–अलग हो जाती है।"

४७. अन्य कारणों से फैलनेवाले रोग

"जंग लगी कील या कांटा त्वचा में प्रवेश कर जाता है तो उसके साथ-साथ उस पर चिपके कीटाणु भी शरीर में घुस जाते हैं। चोट लगने पर भी उससे होकर कीटाणु शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। टिटानस, खुजली, फोड़े-फुंसी आदि रोग रोगी की त्वचा को छूने से लग जाते हैं। संभोग के कारण भी कुछ छूत के रोग फैलते हैं।

४८. रोग की प्रारंभिक अवस्था

कीटाणुओं के प्रवेश करते ही रोग प्रकट नहीं होते हैं। उसके लिये थोड़ा समय लगता है। शरीर में जब कीटाणुओं की संख्या खूब बढ़ जाती है और उनसे लड़ने की शक्ति शरीर में नहीं होती है तब वे आराम से अपने परिवार की वृद्धि करने लगते हैं। कीटाणु जब शरीर में प्रवेश करते हैं तब से लेकर रोग के लक्षण प्रकट होने तक के समय को रोग की प्रारंभिक अवस्था कहते हैं। प्रत्येक बीमारी की अपनी प्रारंभिक अवस्था होती है। कोई-कोई बीमारी कुछ घंटों में ही फैलकर असर करने लग जाती है तो कोई-कोई बीमारी सालों तक पनपकर फिर असर डालती है। अब हवा के जरिए फैलनेवाले कुछ विशेष रोग, उनके लक्षण और उनको फैलने से रोकने के लिये बरतनेवाली सावधानियाँ आदि के बारे में बात करेंगे।"

४९. हवा से फैलनेवाली बीमारियाँ

जुकाम, सर्दी (कफ युक्त सर्दी) आदि बीमारियाँ वाइरस नामक बहुत सूक्ष्म कीटाणुओं के कारण फैलती हैं। इन कीटाणुओं के कई

प्रकार हैं। इनके अलावा शारीरिक प्रकृति के कुछ विरोधी तत्व जिन्हें 'एलर्जी' कहते हैं, उनके कारण भी ये रोग लग जाते हैं।

लक्षण

नासा रन्ध्र और इन रन्ध्रों के चारों ओर स्थित (अंदर) कोटर गला, आँखें आदि भागों पर बड़ा बुरा असर पड़ता है। इससे आँखें लाल हो जाती हैं, नाक बहने लगती है, छींक आती है, खाँसी भी आती है, गले में किच-किच होने लगता है। कुछ लोगों को हल्का ज्वर भी हो आता है। प्रथम तीन दिन नाक से पानी के समान एक प्रकार का द्रव बहने लगता है। चौथे दिन पीले रंग का बलगम नाक से निकलता है। कभी-कभी कुछ लोगों को इससे सिर में भी दर्द होता है।

"इसके निवारण के लिये किसी दवा की आवश्यकता नहीं है। पूर्ण आराम से यह कम हो सकता है। सिर में भी दर्द का अनुभव हो तो एकाध टिकिया लेने से कम हो जायेगा। यहीं तक सीमित न रहकर पीले रंग का बलगम कई दिन लगातार निकलता रहे और फफेडों में जम जाय तो योग्य चिकित्सक के पास जाकर जाँच करा लेना जरूरी है। उस हालत में दवा का सेवन करना अत्यावश्यक है।"

"जिन वस्तुओं से कुछ लोगों को कष्ट होता है उनसे दूर रहना चाहिये, यही परहेज है। उदाहरण के लिये घर साफ करते समय, पुस्तकों की अलमारी साफ करते समय, बिस्तर झाड़ते समय, धूल के कारण कुछ लोगों की नाक बहने लगती है। आँखें लाल हो जाती हैं। इन सब कामों से वैसी शारीरिक प्रकृतिवालों को परहेज रखना चाहिये। कुछ फूलों के मकरंद से, तीखी गंध से, तिनकों से भी कुछ लोगों की तबीयत बिगड़ जाती है। तुरंत इसका असर हो जाता है। इसके लिये अधिक समय नहीं लगता।

विषक्त VIRUS एलर्जी ALERGY

मान लीजिये किसी विशेष सुगंध से किसी को एलर्जी है तो उस सुगंध से जहाँ तक हो सके हटकर रहना चाहिए। धूल झाड़ना बिस्तर झटकना आदि काम किसी को करना पड़े उनको इन कामों से तकलीफ होती हो तो धूल को नाक, मुँह आदि के द्वारा अन्दर नहीं घुसने देना चाहिये। नाक–मुँह बाँधकर रखना चाहिये कपड़े से ऐसे काम में हाथ डालने के पहले।

५०. इन्फ्लूएन्जा

यह बीमारी वाइरस कीटाणुओं में प्रोत्साहन पाकर पनपती है। यह जानलेवा नहीं है पर दूसरी कई बीमारियों के लिये नींव के समान आश्रयदायी हैं। ये वाइरस जब शरीर में प्रविष्ट होते हैं तब इनकी संख्या में वृद्धि होती चली जाती है। इनकी वृद्धि के लिये दो हो तीन दिन काफी हैं। इस कारण इन कीटाणुओं द्वारा विसर्जित विषाक्त पदार्थ धूल के साथ अच्छी तरह मिल जाते हैं। परिणाम स्वरूप शरीर के अंग कमजोर हो जाते हैं। यदि पहले से शरीर में किसी रोग के कीटाणू प्रविष्ट हो चुके हों तो इस मौके का वे अच्छी तरह लाभ उठाएँगे। शरीर की कमजोरी उनके लिए परिवार बढ़ाने की सुविधा प्रधान करती है। उदाहरण के लिए क्षय रोग के कीटाणु पहले ही हमारे शरीर में घुसे हुए हैं तो शरीर के कमजोर होते ही उन कीटाणुओं की खूशी की सीमा न रहेगी। वे धड़ा घड़ बढ़ जाएँगे संख्या में। फिर क्या? वह क्षय रोगी बन जाएगा।

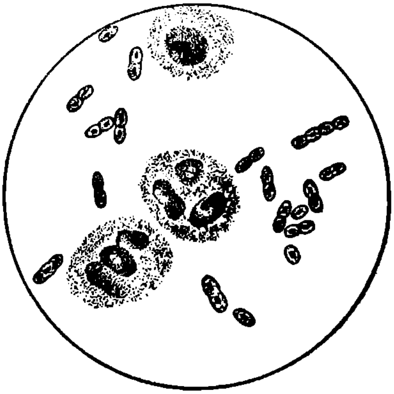

लक्षण

इन्फ्लूएन्जा के कीटाणु जब शरीर में प्रवेश करते हैं तब दो-तीन दिन में बुखार आना शुरू हो जाएगा। हाथ-पैर, गला, छाती,

सिर आदि सब में दर्द होगा। पूरा शरीर बेहद दुखेगा। खाँसी आएगी पर खाँसते समय बड़ी तकलीफ़ होगी। खांसने से कफ़ भी नहीं निकलेगा। चार या पाँच दिन इसी तरह शरीर की हालत खराब रहेगी, फिर बुखार छूटकर आराम होगा।

चिकित्सा

इस बीमारी में आराम की सख्त जरूरत है। शरीर हाथ-पैर, सिर आदि में होनेवाले दर्द को दूर करने के लिए आस्प्रिन जैसी टिकियाओं का सेवन कर सकते हैं। इसी बीमारी का श्वसन संस्थान से सम्बन्ध रहता है, अतः विटामिन 'सी' की गोलियों से अवश्य आराम पहुँचेगा। गरम (हल्का) पानी में नमक ड़ालकर दिन में दो-तीन बार ग़रारा करने से फायदा होगा। उबलते पानी में कुछ बूंद टिङ्चर बेंज़ाइन डालकर सिर से लेकर शरीर को अच्छी तरह ढ़ाककर बैठ जाना चाहिए। पानी से निकलते भाप के साथ टिङ्चर बेन्ज़ाइन भी नाक और मुँह के द्वारा शरीर के अन्दर प्रवेश करेगा। इसी तरह यूकलिप्टस तेल को भी उबलते हुए पानी में ड़ालकर भाप अन्दर ले सकते हैं। इससे अवश्य जी हल्का होगा।

रोग-निरीध के तरीके

इस रोग के कीटाणु साँस छोड़ते समय, खांसते समय, छींकते समय, थूकते समय हवा के साथ मिल जाते हैं। ऐसे रोगी के साथ बात करते समय हमें सावधान रहना चाहिए। नाक मुँह आदि को कपड़े से ढांककर बोलना अच्छा है। खांसते, छींकते समय भी ऐसा ही करना चाहिए। बीमार आदमी को जहाँ तहाँ थूँकना नहीं चाहिए। कागज़ पर थूकने से कूड़े में फेंक सकते हैं। कपड़े पर थूकने से उबालकर धोकर धूप में सुखा सकते हैं। इन सबसे उत्तम तरीका ऐसे कागज़ या कपड़े को जला देना होगा।

५१. कुकुर खांसी

यह रोग अक्सर एक से पाँच साल की उम्रवाले बच्चों को लगता है। यह भी कीटाणुओं के कारण ही लगता और फैलता है।

लक्षण

इन कीटाणुओं के, शरीर में लगते ही सात से दस दिन तक सर्दी, बुखार रहेगा। साधारण सर्दी-बुखार हो तो चार-पाँच दिनों में छूट जाएगा। ऐसा न होकर इसमें सर्दी-बुखार लगातार रहेगा और खांसी (सूखी) और छींक आती रहेंगी। ये कीटाणु जब अच्छी तरह शरीर में जम जाएँगे तब एक बार खांसी आएगी तो बन्द नहीं होगी। लगातार खाँसते-खांसते उल्टी आएगी। इस तरह लगातार खांसते समय साँस दबाव के साथ बाहर निकलकर अंदर जाएगी। उस समय आवाज़ भी निकलेगी। कभी-कभी इस बीमारी में खांसते-खांसते सांस अन्दर न ले सकने के कारण चेहरा नीला पड़ जाएगा। मुंह खुला रह जाएगा, जीभ लटक जाएगी, आंखें बाहर निकलती-जैसी दिखाई देंगी। कुछ कमज़ोर बच्चों की हालत बहुत ही खराब हो जाएगी। मिरगी के समय जिस तरह हाथ-पैर खिंचने लगते हैं उस तरह अति बलहीन बच्चों के हाथ-पैर भी खिंचने लगेंगे बच्चों के पेट में इस बीमारी के समय तनिक भी खाना नहीं ठहरेगा। सदा खांस-खांस कर उल्टी कर देने के कारण बच्चे सूखकर कांटे हो जाएँगे। कभी-कभी खासते-खांसते नाक, कान, मल-द्वार आदि के द्वारा खून निकलने लगेगा।

निरोधक–तरीके

तीन से चार महीने तक के उम्रवाले शिशुओं को कुकुर खाँसी-निरोधक दवा सूई के द्वारा तीनबार दी जाती है। इस रोग के लगने के बाद सूई लगाना व्यर्थ है। फिर व्याधि का शमन नहीं होगा।

इलाज

बीमार बच्चों को अलग हवादार कमरे में तीन सप्ताह आराम से रखना चाहिए। दूसरे बच्चों के साथ इन्हें खेलने नहीं देना चाहिए। इन बच्चों की उल्टी, थूक, कफ़, बलगम आदि को कागज़ में लेकर कागज़ सहित जला ड़ालना चाहिए। यदि कपड़े का इस्तेमाल किया तो उसे उबलते पानी में कीटाणु नाशक दवा मिलाकर

धोकर धूब में सुखाना ज़रूरी है। बीमार बच्चों के द्वारा उपयोग किए गए कपड़े, बरतन आदि को अलग रखना चाहिए। यदि दूसरे बच्चे उन्हें लेकर इस्तेमाल करते हैं तो उनमें लगे कीटाणुओं द्वारा रोग लगने की संभावना है।

इस बीमारी का खास, कोई इलाज नहीं है। खाँसी कम करने के लिए डॉक्टर कोई दवा दे सकता है। लेकिन उससे ज्यादा कोई फायदा नहीं होगा। बच्चे जब खाँस कर उल्टी कर देते हैं तब उन्हें कोई पुष्टिकर खाना देना चाहिए ताकि अधिक कमजोरी न आ जाय।

५२. कंठ रोहिणी (डिप्थीरिया)

यह बीमारी कोलान नामक एक प्रकार के कीटाणुओं द्वारा लगती है। इन कीटाणुओं के द्वारा जब शरीर पर आक्रमण होता है तब दो-तीन दिन में ही इसके लक्षण दिखाई देने लगते हैं। यह रोग भी अधिकतर बच्चों को ही लगता है। यह अक्सर सर्दी के मौसम में ही फैलता है। यह बड़ा भयानक रोग है पर शुरू में ऐसे लक्षण नहीं होंगे। हल्का बुखार, गले में दर्द, छिल जाना, कभी कभी सिर में दर्द उल्टी आदि की शिकायतें होंगी। इसलिए कभी उपर्युक्त बातों की शिकायत करें तो तुरंत उन्हें डॉक्टर के पास ले जाकर गले की जाँच करा देनी चाहिए।

लक्षण

गले में, दोनों ओर के माँस को 'टान्सिल' कहते हैं। इस टान्सिल पर मटमैले रँग की झिल्ली फैली होगी। इसे अलग करना आसान नहीं है। पर यदि बढ़ने दिया तो गले में, अलिजिह्वा आदि पर यह झिल्ली फैलकर सूजकर खाना या पानी तक निगलने में असुविधा होगी। इस रोग को शुरू में ही दूर करना चाहिए। नहीं तो इन कीटाणुओं के द्वारा विसर्जित विषैला पदार्थ खून के साथ मिलकर हृदय तथा नसों पर बड़ा बुरा असर डालेगा। कभी-कभी इस रोग के कारण मृत्यु भी हो जाती है।

फैलने के तरीके

डिप्तीरिया रोग से पीडित व्यक्तियों द्वारा उनके बलगम, उनकी थूक नाक से निकलने वाले कफ आदि से इस रोग के कीटाणु बहुत जल्दी फैलते हैं। इसके अलावा कुछ लोगों को ऊपर कहे हुए कष्टों का अनुभव बिल्कुल नहीं होगा, पर उनके गले में इस रोग के कीटाणु बसे रहेंगे। ऐसे लोग भी थूक और बलगम के द्वारा इस रोग को फैलाते हैं। ये लोग जब दूसरों को चूमेंगे या दूसरों के निकट खडे-खड़े छींकेंगे तो आसानी से कीटाणु फैल जाते हैं अर्थात् पासवालों को भी यह बीमारी लग जाती है।

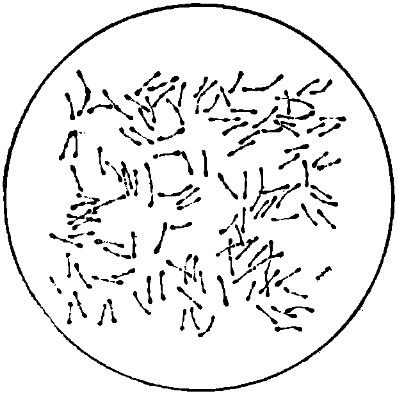

कुछ लोगों की आदतें बड़ी गन्दी होती हैं। नाक छिनक कर हाथ नहीं धोते हैं, बस कपडे में पोंछ लेते हैं और खाने की चीजों पर हाथ लगा देते हैं। दुकानों में शरबत, आइसक्रीम आदि, बिना हाथ धोये ही देना शुरू करते हैं तो उन चीजों में रोग के कीटाणु चिपककर पीने या खाने वालों के शरीर में पहूँच जाते हैं।

रोग–रोक के तरीके

जब बच्चा एक वर्ष का होता है तभी डिप्थीरमा निरोधक सूई लगा देनी चाहिये। यही इस बीमारी को रोकने का सर्वोत्तम साधन है। एक–एक महीने के अंतर में तीन सूइयाँ लगानी चाहिए। जब बच्चे को शुरु-शुरु में पाठशाला भेजते हैं तब एक बार और प्रारंभिक पाठशाला से पढ़ाई खत्म कर बाहर निकलते समय एक बार सूई लगानी चाहिये। इस बीमारी के लिये अलग सूई नहीं लगाई जाती है। पर टिटानस कुकुरखाँसी आदि की दवाओं के साथ डिप्तीरिया की दवा भी मिला दी जाती है। सूई के द्वारा इस त्रिमिश्रित दवा को शरीर में प्रविष्ट करा देते हैं।

जब डिप्थीरिया लग जाय तो निम्नलिखित सावधानियों की जरूरत पडती है :—

बच्चों के गले में दर्द, खराश आदि की शिकायत हो तो तुरंत चिकित्सक के पास ले जाना चाहिये। अगर यह बीमारी जड पकड लेती है वो चिकित्सक भी बच्चों की जान बचा नहीं पाएँगे। इस बीमारी के लक्षण किसी बच्चे में दिखाई दे तो तुरंत स्वास्थ्य अधिकारियों को इसकी सूचना देनी चाहिये। वे अधिकारी इस बीमारी को फैलने से रोकने की व्यवस्था करेंगे। बीमार व्यक्ति को अलग, हवादार कमरे में रखना चाहिये। वैसा कमरा घर में न हो तो तुरंत अस्पताल में भर्ती कर देना चाहिये। घर के, आस-पास के बच्चों को डिप्थीरिया निरोधक सूई लगवा देनी चाहिए। बीमार द्वारा इस्तेमाल किए जानेवाले कपड़े, बरतन आदि को जब का तब कीटाणु नाशक दवा मिले पानी से धो देना चाहिये। जब तक बीमारी पूरी तरह स्वस्थ नहीं होती तब तक दूसरों को उन्हें छूने से मना करना चाहिये।

चेचक के प्रकार

चेचक के कई प्रकार हैं। अलग–अलग प्रकार की चेचक अलग–अलग कीटाणुओं से उत्पन्न होती है। इनमें चेचक (बडी) बहुत भयानक बीमारी है। आजकल संसार में यह कहीं नहीं है। इसके उन्मूलन के लिये चिकित्सा शास्त्रियों ने कठोर परिश्रम किया। अब उसके बारे में सविस्तार समझेंगे।

५३. चेचक (बड़ी शीतला)

आजकल संसार में यह रोग नहीं है। पर, यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि आगे भविष्य में यह रोग किसी को नहीं होगा। अगर इस बीमारी के बारे में हम जानते तो शुरुआत् में ही इसे रोकने का उपाय कर सकते।

लक्षण

जब चेचक उत्पन्न करनेवाले कीटाणु शरीर में प्रवेश कर जाते हैं उसके बारह दिन बाद इसके लक्षण उभरने लगते हैं। पहले बेहद सर्दी लेकर तेज बुखार के साथ इस बीमारी का आगमन होता है। असह्य सिर दर्द, पीठ-दर्द का अनुभव होगा, भूख नहीं लगेगी, कभी-कभी उल्टी भी हो सकती है। छोटे बच्चों के, बुखार की तेजी के कारण हाथ-पैर भी खिंचने लगते हैं। सूखी खांसी और गले में दर्द की शिकायत होगी। गोरे लोगों के चेहरे और शरीर पर लाल लाल निशान दिखाई देंगे। बुखार तीन दिन में उतर जायेगा।

चेचक के दाने पहले ललाट के ऊपरी भाग और हाथों के ऊपरी भाग में उत्पन्न होते हैं। फिर चेहरे के नीचे के भागों में फैलने लगते हैं। नीचे की ओर एडी के ऊपर से शरीर पर फैलने लगते हैं ये दाने। अंत में कमर प्रांत में दाने निकलेंगे। लेकिन वहां इन दानों की संख्या और जगह की तुलना में कम होगी। कांख और जांध में ये दाने कभी दिखाई नहीं देते।

पहले ये दाने चपटे होते हैं फिर चौबीस घंटों में मूंग या अरहर की दाल के समान बड़े हो जाते हैं। उसके बाद अगले चौबीस घंटों में इनमें पानी भर जाता है और ये उभरकर मोतियों के समान बन जाते हैं। आगे के दो तीन दिनों में दानों के अन्दर भरा पानी पीब में बदल जाता है। उस समय दानों के चारों ओर का भाग लाल होने लगता है। पीब भरते समय फिर बुखार चढ़ेगा। इसके साथ कभी-कभी निमोनिया आदि अन्य बुखार भी हो सकते हैं। इससे जान तक का खतरा हो सकता है। जिन लोगों के शरीर में रोग से लड़ने की क्षमता नहीं होती है या कृत्रिम रोग निरोधक, शक्ति का प्रवेश नहीं हुआ उन्हीं लोगों को इन बीमारियों के लगने का डर रहता है।

कृत्रिम तरीके से निरोधक तत्व जिनके शरीर में प्रविष्ट किया गया है उन्हें यदि चेचक हो भी जाय तो दस ही दिनों में पीब भरे

दाने सूखकर ऊपर से पपडी जम जाती है। इन पपडियों के छूटने में कई दिन लग जाते हैं। छूटने के बाद उस जगह गड्ढ़ा पड़ जाता है। इन गड्ढ़ों पर त्वचा का आवरण चढ़ जाता है पर निशान अमिट होकर अंकित रह जाते हैं। इन्हें चेचक के दाग कहते हैं।

फैलने के तरीके

जिन्हें चेचक रोग हुआ है उनकी सांस द्वारा बाहर निकलकर कीटाणु फैलते हैं। उनके द्वारा थूके जननेवाले बलगम से हमतक कीटाणु पहुँच जाते हैं। मरीजों के शरीर पर चेचक के दाने जब तक पूरी तरह न सूखे तब तक उनके कपड़े, बिस्तर, चादर, बरतन आदि का इस्तेमाल दूसरों को नहीं करना चाहिए। इसलिए उन रोगियों से दूर रहना ही अच्छा है।

५४. मसूरिका या छोटी शीतला

इसके दो प्रकार हैं। एक तो अमौरी के समान छोटे-छाटे दानों के रूप में उभरता है दूसरा है चिचन पॉक्स।

मसूरिका चेचक (बड़ी शीतला) के समान उतनी तीव्र और भयानक नहीं हैं। फिर भी कभी कभी इसका परिणाम बहुत बुरा हो सकता है। यह बीमारी प्रचुर मात्रा में मौजूद है।

इसके कीटाणु जैसे ही शरीर में घुसते हैं उसके चार–पाँच दिन बाद बीमारी प्रकट हो जाती है। हल्का बुखार भी आता हैं। चेचक के समान इसमें कई दिन नहीं लगते हैं। बीमारी के जमने के चार-पाँच घंटों में ही दाने निकल पड़ते हैं। कुछ घंटे बाद दानों में पानी भरकर एक—दो दिन में पीब भी भर जाता है।

ये दाने पहले पहले मुँह के अंदर जबड़ों पर के माँस में निकलते हैं। फिर, मुँह, छाती, हाथ और पर में दिखाई देने लगते है। मुँह पर, पादों के ऊपर अग्रहस्त आदि भागों में कम दाने निकलते हैं। कंधे, जाँघ, काँख आदि भागों में अधिक दाने निक़ल आते हैं। ये दाने जगह जगह पर न होकर ढ़ेर के ढ़ेर पास-पास निकलते हैं।

जब दानों में पानी भरता है तब ये बडे पतले होते हैं। इनमें पीब भरते समय बुखारे नहीं आता है। जब ये सूख जाते है तब अधिक गड्ढ़े नहीं पड़ते हैं। कुछ दिनों के बाद दाग भी उठ जाते हैं।

इस बीमारी के समय बीमार बज्चे को दूसरे बच्चों के साथ मिलकर खेलने नहीं देना चाहिए। वैद्य जो कहते हैं उसका पालन करना चाहिए।

५५. उपर्दश या कच्छपिका

यह भी मसूरिका के समान ही उन्हीं कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न रोग है। शरीर में प्रतिरोध की शक्ति होने पर किसी एक भाग में, और जिसके शरीर में वह शकित नहीं है, उसके पूरे शरीर में दाने निकल आते हैं। इस बीमारी में बुखार तेज होता है। ये कीटाणु पीठ की हड्डियों के पास स्थित नसों पर आक्रमण करते हैं। वे जिन नसों को दु:ख देते हैं उन नसों से सम्बन्धित शरीर के भाग पर पहले पहल दाने निकल आते हैं। पहले दानों में पानी भरकर फिर पीब भरता हैं।

५६. रेतिया माता

यह रोग बहुत जल्दी फैलनेवाला होता है। यह बचपन में निकलता है। पर बचपन में नहीं निकला तो बड़े होने पर निकलता है। इसे भी कुछ लोग मसूरिका कहते हैं। कमजोर बच्चों को एक से अधिक बार इस बीमारी का शिकार होना पड़ता है। यदि शरीर में इससे लड़ने की शक्ति हो तो इसका असर नहीं पड़ता।

लक्षण

कीटाणु जब शरीर में प्रवेश करते हैं उसके दस दिन में बुखार चढ़ेगा। बुखार तेज रहेगा। सांस की नली में घाव होकर जुकाम लगेगा। फिर–पूरे शरीर पर दाने प्रकट होंगे। खांसी, छींक आंख लाल होना, नाक बहना आदि कष्ट सहना पड़ेगा चेहरा तमतमाएगा। रोशनी देखना नहीं चाहेंगी आँखें।

ये दाने लाल-लाल होंगे। गालों पर, होंठों के नीचे और ललाट पर अर्थात् सिर और ललाट के संधि स्थान पर अधिकतर निकलेंगे। कानों के पीछे, चेहरे पर, गले पर, वक्ष पर कोहनी पर, हाथों पर धीरे-धीरे फैलने लगेंगे। ये दाने शरीर के ऊपरी भाग से निचले भाग की ओर फैलेंगे। इसी तरह सूखते समय भी चेहरे पर से शुरू करके नीचे की ओर धीरे धीरे छूटते जाएँगे। अमौरी के समान निकलकर फिर एक के साथ एक लगकर छित्ते के समान दीखेंगे। बुखार कुछ दिनों में उतर जाएगा।

कभी-कभी इसका परिणाम बड़ा बुरा होता है। बलगम अन्दर जम सकता है, फिर कानों में पीब भरकर धीरे-धीरे निकल सकता है। आँख आ सकती है कभी तो यह दमा में भी परिणत हो सकता है।

निरोध के तरीके

इस बीमारी से पीडित बच्चे को अलग रखना चाहिए। अन्य बच्चों को इसके साथ खेलने नहीं देना चाहिये। ऐसे बच्चे के कपड़े, बिस्तर, बरतन आदि को छूना या इस्तेमाल करना नहीं चाहिए। इसके लिये अब तक कोई इलाज हमारे देश में नहीं किया जाता है।

५७. गलसुआ

यह भी एक प्रकार के वैरस कीटाणुओं से ही उत्पन्न होता है। ये कीटाणु कानों के नीचे गालों में स्थित लार छूटनेवाली ग्रंथियों पर आक्रमण करते हैं। ये भी अन्य चेचक के कीटाणुओं के समान बच्चों को तंग करते हैं। बड़ों को भो ये सताते हैं पर अधिक नहीं। यह बीमारी बीमारों की खाँसी, छींक, थूक बलगम, कपड़े आदि के ज़रिए विस्तृत रूप में फैलती है।

लक्षण

यह बीमारी प्रकट होने के लिए पन्द्रह से बीस दिन लगते हैं। पहले कानों के नीचे गाल पर फूलना शुरू होगा । दो एक दिन में दोनों गालों पर सूजन भरेगी। कुछ दिनों में इसका शमन अपने आप हो जाता है। यह कोई जरूरी नही है कि दोनों गाल फूले एक भी सूज सकता है । इसलिए इसे गलसुआ था कंठरोहिणी कहते हैं।कुछ लोगों को सूजन के शुरू होते ही बुखार चढ़ जाता है, पर कुछ लोगों को बुखार नहीं होता है।

रोग-रोक के तरीके

जिस बच्चे को यह बीमारी लगी है उसे अन्य बच्जों और बड़ों से दू र रखना चाहिए। उसके कपड़े, बरतन, बिस्तर आदि को भी छूना या इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। सूजन जब तक उतरती नहीं तब तक मरीज को पूर्ण-आराम करने देना चाहिए। उसके लिए चलना–फिरना मना है। इसे स्वस्थ करने के लिए कोई इलाज नहीं है।

५८. क्षय रोग

खास तौर पर हवा के जरिए फैलनेवाले रोगों में यह एक है। गाय के दूध से होकर भी यह रोग लोगों को पकड़ लेता है। इसके दो प्रकार हैं। पहली प्रकार एक व्यक्ति से दूसरों को लगनेवाला होता हैं, दूसरा प्रकार गायों को जब यह बीमारी आ जाती हैं तब उसका दूध पीने से मनुष्यों को लगनेवाला होता है।

यह रोग विशेष रूप से फेफ़डों को नुकसान पहुँचाता है पर शरीर के सारे अंग इससे खराब हो ही जाते हैं। इस रोग के कीटाणुओं को जब सूक्ष्म दर्शक यंत्र से देखते है तो बहुत पतले तिनकों के टुकडों के समान दिखाई देते हैं।

प्रारंभिक दशा

जब इस रोग के कीटाणु मनुष्य के शरीर में घुसकर जम जाते हैं और बीमारी उत्पन्न करना शुरू करते हैं तब की दशा को प्रारंभिक दशा कहते हैं। यह रोग बचपन में लगकर लुप्त हो जाएगा। इस स्थिति में रोग के लक्षण विशेष रूप से बाहर प्रकट नहीं होते हैं। लेकिन किसी व्यक्ति के बचपन में इस रोग के कीटाणु शरीर में प्रवेश कर बैठ जाते हैं तो एक लंबे अर्से तक जिन्दे रहते हैं। ये धीरे-धीरे बढ़कर खून, मेंदोवाहिनियाँ हड्डियो के जोड़ी पेट, गुर्दे आदि विशेष अंगों में प्रवेश कर वहीं आराम से परिवार क, वृद्धि करने लगते हैं।

जब शरीर में दूसरे किसी रोग के लगने के कारण कमजोरी आ जाती है तब, या पर्याप्त पोषक तत्व के बिना शरीर जब बलहीन होने लगता है तब ये क्षयरोग के कीटाणु अपनी क्षमता दिखाने लगते हैं।

लक्षण

इस बीमारी के समय हल्का बुखार रहता है, नाड़ी तेज चलने लगती है। थकान, भूख न लगना आदि से परेशानी होती है। शरीर का बज़न घटता जाता है। कफ लेकर खाँसी आती है। साँस लेने में कीठनांई और दम घुटने का-सा अनुभव होने लगता है। छाती में दर्द भी होने लगता है। खाँसी में कफ निकले और शरीर का बजन घटे तो तुरंत फेफडों का एक्स-रे कराना चाहिये। उससे हमें निस्संदेह पता चल जाएगा कि शिकायत क्या है। बीमार व्यक्ति द्वारा थूके गये गये बलगम को सूक्ष्म दर्श क यंत्र से देखने पर इस

बीमारी के कीटाणुओं का होना या न होना स्पष्ट रूप से पता चल जायेगा ।

फैलने के तरीके

इस रोग से पीड़ित लोग जब थूकते हैं, खाँसते हैं या छींकते हैं तब कीटाणु बाहर निकलते हैं और हवा के साथ मिल जाते हैं । इस हवा में साँस लेनेवालों की नाक से होकर फेफडों में पहुँच जाते हैं । अधिक भीड़ भरी जगहों में सिनेमा थियेटरों में और जहां हवा के आने-जाने की अधिक संभावना न हो वहाँ पर रोगी यदि मौजूद हों तो उनकी साँस के साथ उनके अन्दर के कीटाणु निकलकर वातावरण में भर जाते हैं । उस मरीज के आस पास बैठे हुए या खड़े लोग उसी हवा में साँस लेते हैं तो कीटाणु उन सब के अन्दर जाकर, खासकर बच्चों में प्रवेश कर उस रोग को फ़ैलाते हैं ।

इस रोग के संबंध में हमें बहुत सावधानी बरतने की जरूरत है, क्योंकि क्षय रोगी थूकते हैं या छिनकते हैं तो उस बलगम में अधिक संख्या में कीटाणु रहते हैं । ये अगर सूखकर मिट्टी के साथ

मिल जाते हैं तो छह महीने के बाद भी कीटाणु सही—सलामत जिंदे रहते हैं। कीटाणु-युक्त यह मिट्टी जब हवा में उडती है तब कीटाणु नाक के द्वारा लोगों के फेफडों में जाकर बस जाते हैं। खुले

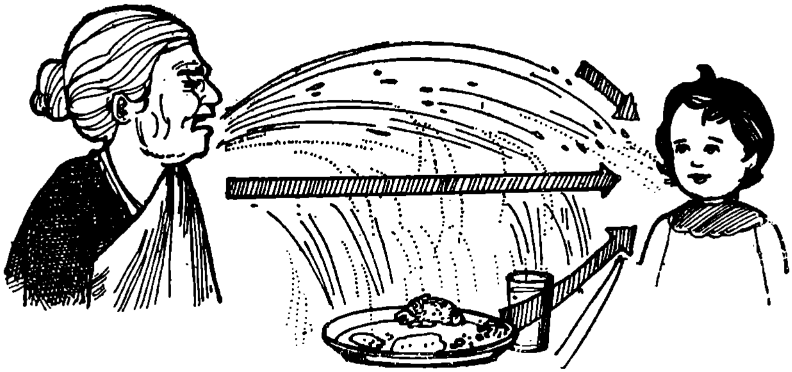

पड़े दूध, भोजन आदि पर हवा के साथ जाकर चिपकजाते हैं और उन्हें खाने पीने पर अन्दर जाकर बाद में असर करने लगते हैं।

इलाज

आजकल इस रोग को दवाओं के द्वारा दूर किया जा सकता है। पहले क्षयरोगियों के लिये अलग अस्पताल बने होते थे। मरीज उसमें भर्ती होकर लंबे समय तक रहकर चिकित्सा करवा लेते थे। फिर भी सभी क्षय-रोगी बच न पाते थे। पर अब डॉक्टरों के द्वारा दी गई दवा का नियमित रूप से सेवन करने से अस्पताल जाने की भी जरूरत नहीं होती है, घर पर रहकर ही रोग से छुटकारा मिल सकता है।

रोग का पूर्ण रूप से जब तक निवारण नहीं होता है तब तक रोगी को अच्छी तरह आराम करना चाहिये। भोजन में दूध, अंडे, मछली का तेल, विटामिन ए तथा कैलशियम का होना अनिवार्य है। इसके अलावा निम्न लिखित बातों का भी अच्छी तरह ध्यान रखना चाहिये :—

(क) घर पर रहकर इलाज करवाते समय नियमित रूप से डाक्टरों के कथनानुसार दवा का सेवन करना चाहिये ।

(ख) जब-जब डॉक्टर कहते हैं तब-तब जाकर स्वास्थ्य की परीक्षा करवा लेनी चाहिये ।

(ग) सदा पौष्टिक आहार खाना चाहिये ।

रोग निरोध के तरीके

रोगी की थूक और बलगम को कागज या डिब्बे में बन्द कर जब-तब जला देना चाहिये । थूक के लिये उपयोग में लाए जाने वाले बरतन में 'डेटॉल' आदि कीटाणु नाशक पदार्थ डालकर अच्छी तरह बन्द करके रखना चाहिये । फिर अंत में उसे नष्ट कर डालना चाहिये ।

रोगी के बरतन अलग होने चाहिये । घर के और लोगों को डॉक्टरी जाँच के लिये जाना जरूरी है । निरोधक सूई भी उन्हें लगवा लेनी चाहिये । मरीज को हवादार अलग कमरे में रखना चाहिये । जब ये खाँसते या छींकते है तब इन्हें अपनी नाक और अपने मुँह को अच्छी तरह कपडे से बन्द कर लेना चाहिए । उस कपडे को कीटाणु नाशक दवा मिश्रित पानी में धोकर साफ रखना चाहिये । यह रोग दूध के जरिये बहुत जल्दी फ़ैलता है अतः दूध को अच्छी तरह अबालकर पीना जरूरी है ।

पानी और भोजन के जरिए फैलनेवाले रोग

"पहले ही मैंने बता दिया था कि पानी और भोजन के जरिए दस्त, पेचिश, हैजा, तपेदिक, शिशु पक्षाघात, पीलिया आदि रोग फैलते हैं । इन रोगों के बारे में अब सविस्तार वर्णन करूँगा ।" वैद्यजी ने कहा ।

डेटॉल DETTOL

५९. दस्त

इसके दो प्रकार हैं। पहला प्रकार संक्रामक नहीं है। दूसरा संक्रामक है। पहला प्रकार भोजन की गडबड़ी के कारण होता है। छोटे बच्चों को जब गरिष्ट पदार्थ अधिक खिला देते हैं तब दस्त होना शुरू हो जाता है बदहजमी से। पहले पहल बच्चों को गाय या भैंस का दूध पिलाते हैं तब वे उसे पचा नहीं पाते हैं तब भी दस्त की शिकायत हो जाती है। बच्चे जब ठोस आहार ग्रहण करने लगते हैं तब अनाज, दाल, सब्जियाँ आदि को पचा न पाने के कारण पेट खराब हो जाता है और दस्त शुरू हो जाता है।

संक्रमाक तस्त

ये कीटाणु तथा जीवाणु के कारण उत्पन्न होता है। आंतों में रहने वाले एक प्रकार के जीवाणु अचानक तकलीफ़ देना शुरू कर देते हैं। तब दस्त शुरू हो जाता है। तपेदिक संबंधी कीटाणु भी इस बीमारी का मूल कारण बन सकते हैं। **जियार्डिया** नामक एक प्रकार के कीटाणु भी दस्त के कारण बन कर तकलीफ़ देते हैं कभी-कभी।

संक्रामक दस्त जिस बच्चे को लग जाता है उस दिन में पांच से बीस बार पतला पाखाना होता है। शुरू–शुरू में मल थोड़ा ठोस रहेगा। पर होते मल की मात्रा कम और पानी की मात्रा अधिक हो जाएगी। कभी-कभी पेट में भयानक दर्द उठ सकता है, बुखार आने की, उल्टी होने की भी संभावना है। अनेक बार दस्त होने से बच्चे के शरीर से पानी और लवण पदार्थ निकल जाते हैं। इससे बच्चे की आँखें धँसकर, शरीर की त्वचा पर शिकन पड़कर मुँह सूखना शुरू हो जाता है। यदि उसे अपने हाल पर छोड़ दें तो हाथ-पैर ठंडे पडकर खिंचना शुरू हो जायेंगे।

दस्त DIAOREHEA

जीयार्डिया GIARDIA

इलाज के तरीके

जिस बच्चे को दस्त हो रहा है उसके शरीर में लवण तथा पानी की कमी हो जाएगी। इसलिए थोडी-थोडी देर बाद जरा-जरा पानी उसे पिलाना चाहिए। उबले हुए पानी को ठंडा करके उसमें जरा–सा नमक और आधी चम्मच चीनी मिलाकर देने से फायदा होगा। जल्दी पचने वाला बार्ली, आरारूट आदि को अच्छी तरह उबाल कर बिना दूध मिलाए छाछ मिलाकर पतला करके थोड़ा-थोड़ा दे सकते हैं। बड़ों को ऐसी हालत में केला और सेब आदि फलों को उबालकर दे सकते हैं। प्रोटीन भरे दही और मट्ठा फायदेमंद हैं। लेकिन दूध किसी भी हालत में नहीं पिलाना चाहिए।

६०. पेचिश

इस बीमारी में मल अधिक निकलता है, साथ-साथ आंव तथा खून मिले होते हैं। बेहद पेट-दर्द होगा, मरोडन सी लगेगी। बुखार भी चढ़ेगा। **एमीबा** नामक जीवणु से यह बीमारी उत्पन्न होती है। इसके भी दो प्रकार हैं। पहला प्रकार अमीबा से उत्पन्न होता है तो दूसरा प्रकार कीटाणु से। एमीबा से उत्पन्न पेचिश पानी के द्वारा फैलता है। कीटाणुओं से उत्पन्न पेचिश अधिकतर मक्खियों के कारण फैलता है।

निम्न लिखत विवरणों से हम पता कर सकते हैं कि यह पेचिश किस प्रकार की है।

कीटाणुओं से उत्पत्न पेचिश	**अमीबा से उत्पन्न पेचिश**
१. मल बृहुत कम मात्रा में पर कई बार निकलेगा।	मल की मात्रा आधिक होगी और केवल कुछ ही बार मल-विसर्जन होगा।

एमीबा AMIBA

पेचिश DYCENTRY

२.	पेट में भीषण पीड़ा होगी ।	पेट में दर्द इतना ज्यादा नहीं होगा ।
३.	बुखार और सिर में दर्द सख्त होगा ।	न ज्यादा बुखार होगा न ज्यादा सिर में दर्द ।
४.	मल से अत्यधिक दुर्गंध छूटेगी ।	मल से आधिक दुर्गंध न निकलेगी ।
५.	मल के साथ खून की मात्रा आधिक होगी, आंव कम होगा ।	आंव की मात्रा आधिक होगी, खून कम होगा ।
६.	अचानक बीमारी लग जाएगी, लेकिन कुछ ही दिन में ठीक होने की संभावना है ।	धीरे-धीरे बीमारी लगेगी, पर कई दिन तकलीफ़ देगी ।

फैलने के तरीके

अमीबा एक-कोशी सूक्ष्म प्राणी है । इसके हाथ-पैर नहीं होते हैं तो भी वह शरीर को सिकोड़कर, लंबा कर एक जगह से दूसरी जगह यात्रा कर सकता है । जब ये अमीबा अपने रहने और वंश-वृद्धि के लायक परिस्थिति और वातावरण नहीं पाते हैं तब ये चिस्ट बन जाते हैं । पेचिश के समय अमीबा के रूप में और पेचिश जब न हो तब चिस्ट के रूप में मल के साथ बाहर निकलते हैं ।

पेचिश की बीमारी जिसे लगी हो वह व्यक्ति मल–विसर्जन के बाद किसी जलाशय में धोएगा या कपड़े साफ करेगा तो ये एक–कोशीय अमीबा पानी में मिल जाते हैं । उसी जलाशय के जल को बिना उबाले यदि किसी ने पिया तो चिस्ट पानी के साथ आँतों में पहुँच जाते हैं । वहाँ पहुँचने के बाद प्रत्येक चिस्ट से चार-चार अमीबा निकलते हैं । उसके बाद वे दो–दो में द्विविभाजित होकर वंश-वृद्धि करते हैं ।

जैसे ही इनकी संख्या बढ़ती है वैसे ही ये आँतों की दीवारों को घायत कर देते हैं । छोटे मुँह वाले घड़ों के समान ये घाव लगते

हैं। अब उन घावों से खून बहना शुरू होता है। वही खून मल के साथ बाहर निकलता है। यही अमीबा से उत्पन्न पेचिश है।

आँतों में अच्छी तरह बसने के बाद खून के साथ मिलकर सारे ऊतकों को मिटाने की कोशिश करते हैं ये अमीबा। वहाँ पीब भरे छोटे-छोटे फोड़े भी उत्पन्न हो जाते हैं इनके कारण। खून पहले पित्ताशय में पहुँचता है। खून के साथ ये वहाँ पहुँचकर उसे नष्ट करना शुरू करते हैं। बाह्य जहर वाले कीटाणुओं को पित्ताशय पहले ही छान देता है। और किसी बीमारी के कारण यदि पित्ताशय कमजोर हो गया हो तो उसे ये अमीबा आसानी से मिटाने लग जाते हैं। और यह प्राण घातक अवश्य सिद्ध होता है। फिर फेफड़ों पर भी अपना बल आजमाते हैं ये अमीबा।

पथ्य

पथ्य के रूप में जल्दी से हजम होनेवाली चीजें–जैसे मट्ठा, आरारूट, बिस्कुट आदि दे सकते हैं।

फैलने से रोकना

खाना खाने के पहले और मल-विसर्जन के बाद अच्छी तरह हाथ साबुन से साफ करे तो अच्छा होगा। भोजन के पदार्थ अच्छी तरह उबले हों तो इस खतरे से बच सकते हैं। भाप में उबली चीजेंभी लाभकारी हैं। बाहर होटलों में सड़कों के किनारे से खरीद कर खाना बिल्कुल ठीक नहीं है। होटल आदि जगहों में काम करनेवालों में किसीं को यह बीमारी हो सकती है। यदि वे लोग अच्छी तरह हाथ साफ नहीं करते तो नाखूनों के बीच कहीं पेचिश के बीज छिपे रह सकते हैं। वे जब खाने की चीजों में हाथ लगाते हैं तब भोजन-सामग्री पर वे कीटाणु आराम से बैठ सकते हैं। उससे भोजन के साथ लोगों की आँतों में बड़ी सरलता से वे पहुँचते हैं। इस बीमारी को जड़मूल से उखाड़ फेंकना आसान नहीं है। मक्खियों के द्वारा ये कीटाणू काफी मात्रा में फैलते हैं। मक्खियों की आबादी

को उजाड़ने के पूर्व भोजन सामग्रियों को मक्खियों से बचाकर ढँककर रखना अत्यावश्यक और अनिवार्य है ।

६१. हैजा और इसके लक्षण

हैजा जिसे लगा हो उसे पानी के समान मटमैले रंग का दस्त तेज़ी से निकलता है । इसके साथ–साथ कई बार उल्टियाँ भी होने लगती हैं । मितली का अनुभव बिल्कुल नहीं होगा पर कई बार बिना पूर्व सूचना के उलटियाँ होती रहेंगी । टट्टी होते समय पेट में दर्द नहीं होगा । प्रारंभिक काल में ही अर्थात् जब बीमारी लगती है तभी दस्त और उल्टी को नियंत्रित न रखेंगे तो माँस-पेशियों में दर्द शुरू हो जाएगा । शरीर शिथिल हो जाएगा ।

ये कीटाणु आँतों में बहुत जल्दी संख्या बढ़ाने लगते हैं । छोटी आंत में रस–ग्रहण की क्रिया चलती है । भोजन में निहित पोषक तत्व खून में मिलता है । आँतों में निहित रसांकुर (VILLI) भोजन से पोषक तत्व ग्रहण कर खून में मिलाते हैं । इसके विपरीत काम करते हैं वे हैजा के समय । खून से पानी और लवण को आँतों में ला देते हैं । उस तरह पेट में बहुत पानी और लवण जमा हो जाता है । इस मिश्रण को बाहर लाने के लिए उल्टियाँ और दस्त होने के सिवा और कोई चारा नहीं है ।

जब खून में पानी और लवण की मात्रा कम हो जाती है तब रक्त चाप बहुत उतर जाता है । हृदय का स्पन्दन मंद पड़ जाता है । नाड़ी भी गिरने लगती है । गुर्दों में जितना खून पहुँचना चाहिए उतना नहीं पहुँचता है । अतः विसर्जित पानी को अलग करने के काम में भी बाधा पड़ जाती है । इसलिये खून खराब होने लगता है । कभी-कभी पेशाब बाहर निकलना बिल्कुल बन्द-सा हो जाता है । इसके कारण गुर्दे बेकार भी हो सकते हैं । हैजे की बीमारी का इलाज नहीं करेंगे तो हृदय का काम रुकने से प्राणांत होने की संभावना है ।

हैजा—CHOLERA

बीमारी का कारण

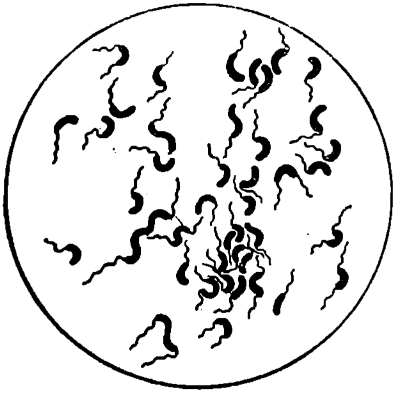

इस बीमारी को उत्पन्न करनेवाले कीटाणु आकार में अर्द्ध विराम (,) के समान होते हैं। इन्हें वाइब्रियो (लोलाणु)[1] कहा जाता है। जिस व्यक्ति को यह बीमारी हुई है उसके दस्त और उसकी उल्टी में ये कीटाणु अत्यधिक संख्या में भरे होते हैं। मक्खियाँ इन पर बैठकर इस रोग को फैलाती हैं। रोगी के कपड़े जिस जलाशय में धोए जाते हैं उस जलाशय के पानी को पीने से भी यह बीमारी फैलने लगती है।

इलाज

हैजे से पीड़ित व्यक्ति को अस्पताल में भर्ती कर देना चाहिये। वहाँ शरीर से बाहर दस्त द्वारा निकलने वाले पानी और लवण की मात्रा में जितनी शक्ति होती है उतनी शक्ति को पुनः चिकित्सा साधनों के द्वारा शरीर के अंदर प्रविष्ट करा दिया जाता है। यदि अस्पताल में भर्ती नहीं करा सके तो बीमारों के मल-मूत्र, कै आदि को फिनाइल (Phenoyle) से मिलाकर आधे घंटे तक रखकर, एक गहरा गड्ढ़ा खोदकर उसमें गिराकर गाड़ देना चाहिए। कहीं भी किसी को हैजा हो जाय तो तुरंत स्वास्थ्य अधिकारी को सूचना देनी चाहिये। जिसे हैजा हो गया है उसके घर हमें जाना नहीं चाहिये, उसे भी हमारे यहाँ आने नहीं देना चाहिये।

रोग-निरोध के तरीके

मेलों, हाट-बाजारों, उत्सवों और बाढ़ों के समय हमें अत्यंत

लोलाणु VIBRIO

सावधानी से काम लेने की आवश्यकता है । वैसे अवसरों पर गाँव के सारे लोगों को हैजे को रोकने की सूई लगवा लेनी चाहिये । जिस जलाशय से पीने का पानी लेते हैं उस जलाशय में चूना मिलाना चाहिए । खूब उबला हुआ गरम भोजन खाना चाहिए । उबला हुआ पानी ही पीना चाहिए । फलों को खूब धोकर खाना चाहिये । सड़े फल कभी नहीं खाने चाहिए । भोजन पर मक्खियों को नहीं बैठने देना चाहिए । मक्खियों को नष्ट करने की पूरी कोशिश करनी चाहिए । पीने का पानी, भोजन आदि को बड़ी सावधानी से ढ़ककर रखना अनिवार्य है ।

इलाज

मरीज को अस्पताल में भर्ती करने के या डॉक्टर के आकर देखने के पहले अपने हाल पर नहीं छोड़ना चाहिऐ । इस बीमारी में शरीर से पानी तीव्र गति से टट्टी के द्वारा निकल जाता है । अतः पानी में जरा नमक मिलाकर थोड़ी थोडी देर के अंतर में देते रहना चाहिए । ग्लूकोस पानी में मिलाकर दिया जा सकता है । नीबू का रस उल्टी रोकने में सहायता पहुँचा सकता हैं । मट्ठा और नारियल का पानी देना भी अच्छा है ।

६२. तपेदिक

लक्षण

लगभग एक से तीन सप्ताह तक के समय में तपेदिक [1] के कीटाणु शरीर में पहुँचकर ज्वर उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं । ज्वर चढ आने पर उतरने में भी दो या तीन सप्ताह लग जाते हैं । इस ज्वर को उत्पन्न करनेवाले कीटाणु सालमोनल्ला टैफी [2] कहलाते हैं । इसके दूसरे प्रकार का नाम पारा टाइफाइड [3] है ।

---

1. तपेदिक TYPHOID
2. सालमनल्ला टैफी SALMONELLA TYPHI
3. पारा टाइफाइड PARA TYPHOID

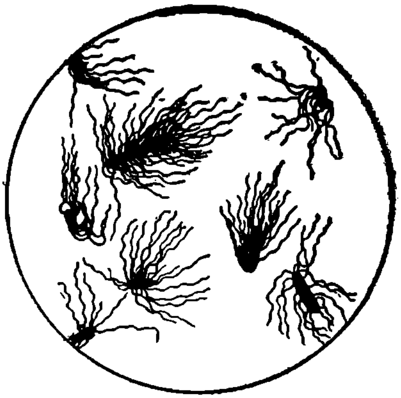

शुरू में बुखार कम रहेगा। दिन-ब-दिन बुखार बढ़ता जाएगा। एक सप्ताह में 40°c तक बुखार तेज हो सकता है। उस समय सिर-दर्द भी सख्त रहेगा। इसका उचित इलाज न होने पर और दो-तीन सप्ताह बुखार की दशा में कोई सुधार अर्थात् कमी नहीं होगी। कीटाणुओं की संख्या बढ़कर खून में बिषैलापन अधिक हो जाएगा। इससे निमोनिया, सन्निपात, आंतों में रक्तस्राव, छिल जाना आदि खराबियाँ उत्पन्न होंगी। अंत में यह बुखार प्राणांतकारी होगा।

इलाज

बुखार चढ़ते ही जाँच कराकर चिकित्सा शुरू कर देनी चाहिए। अस्पताल में भर्ती होकर इलाज कराना जरूरी नहीं है। घर पर भी इलाज करा सकते हैं। पर डॉक्टर के कहे अनुसार नियमित रूप से समय–समय पर दवा का सेवन करते रहना आवश्यक है। काफी मात्रा में पानी पीना चाहिये। पथ्य में दूध, फलों का रस, ग्लूकोस, अण्डे आदि दे सकते हैं। बुखार की तेजी से खूब पसीना छूटेगा। इस कारण मरीज को थोडी थोडी देर में प्यास लगेगी। मुँह सूख जायगा। इसलिए खूब पानी पीने के लिये देना चाहिए। इससे अधिक मात्रा में मूत्र भी बाहर निकलने में सुविधा होगी।

बुखार चढ़ने के बाद शुरू के चार पाँच दिन मरीज नहा सकता है। उसके बाद गर्म पानी में कपड़ा भिगोकर पोंछ सकते हैं। फिर पंखा झलने पर बुखार की तीव्रता में कमी आ सकती है और त्वचा पर स्थित सूक्ष्म छिद्र अच्छी तरह खुलेंगे और आराम से पसीना बाहर निकल सकता है। यदि मरीज को पतली टट्टी होती हो तो

दूध नहीं देना चाहिए दूध में नीबू निचोड़कर छानकर केवल उसका पानी देना चाहिये ।

बुखार उतरकर स्वस्थ होने के बाद भी पथ्य में सावधानी बरतनी चाहिए, क्योंकि मरीज की आँतों में बुखार उतरने के दस—पन्द्रह दिन बाद भी घाव मौजूद रहेगा। तीता-खट्टा, मिर्च—मसाला आदि बिल्कुल देना नहीं चाहिए। पथ्य को पोषक तत्व से भरा अवश्य होना चाहिए पर ज्यादातर द्रव होना चाहिए। जहाँ तक हो सके ठोस खाना नहीं देना लाभकारी होता है।

रोग-निरोध के तरीके

इस बीमारी के कीटाणु मल—मूत्र के द्वारा मरीज के शरीर से बाहर निकलेंगे। वे भोजन, पानी, आइसक्रीम आदि के द्वारा फैलकर दूसरों को बीमारी ला देते हैं। अधिकतर खाने—पीने की चीजों के द्वारा टाइफाइड़ फ़ैलता है। इसलिए खूब सफाई से बना गर्म गर्म भोजन ही खाना चाहिए। जिन चीजों पर मक्खियाँ भिनभिनाती हैं उन्हें खाना नहीं चाहिए। घर और होटलों में खाना परोसने वालों को मल-मूत्र त्याग कर आते ही उगली और नाखूनों के बीच के भाग को अच्छी तरह साबुन से धो लेना चाहिए। हाथ और पैर भी खूब साफ होने चाहिए।

किसी घर में कोई बाइफाइड़ से पीड़ित हो तो उसे हवादार अलग कमरे में रखना चाहिए। तुरंत स्वास्थ्य—अधिकारी को सूचना देनी चाहिए। वे उस गाँव के जलाशदयों में दवा छिड़कने का बन्दोबस्त करेंगे जिससे रोग न फैल सके। रोगी के घर में उस गाँव में रहनेवाले लोगों को सूई लगा लेनी चाहिए। रोगी के बरतनों को अलग रख देना चाहिए। खासकर मक्खियों को पैदा न होने देना चाहिए। ऐसा करने से इस बीमारी पर एक हद तक नियंत्रण पा सकते हैं।

६३. शिशु पक्षा घात

यह रोग वैरस कृमियों से उत्पन्न होता है। ये कीटाणु दो प्रकार फैलते हैं। अशुद्ध भोजन के द्वारा आँतों में पहुँचकर बस जाते हैं। इसके अलावा दूसरे प्रकार में, गले में बसकर हानि पहुंचाते हैं।

जिस मरीज़ के पेट में अर्थात आंतों में कीटाणु जम गए हों उसके मल के साथ वे अधिक संख्या में विसर्जित किए जाते हैं। मल–विसर्जन के बाद यदि रोगी अच्छी तरह हाथ धोए बिना खाना–पानी आदि को छूता है तो उन चीज़ों से होकर कीटाणु दूसरों को लग जाते हैं। अथवा रोगी के मल पर बैठने के उपरांत मक्खियाँ अपने साथ कीटाणुओं को लेकर उड जाती हैं। फिर जब वे भोजन-पानी आदि पर बैठकर उनमें कीटाणुओं को लगा देती हैं तब उस भोजन-पानी को ग्रहण करने वाले व्यक्ति के अन्दर कीटाणु प्रवेश कर उस रोग को फैलाते हैं।

गले में बसनेवाले शिशु पक्षाघात के कीटाणु, मरीज के छींकने या खाँसने पर बाहर निकलकर अच्छे खासे लोगों की नाक या मुँह के द्वारा अन्दर पहुँचकर गले में वास करने लगते हैं और रोग का कारण बनने हैं।

वे जहाँ भी बसे वहीं अपनी संख्या वृद्धि करते रहते हैं। फिर खून के साथ अच्छी तरह घुल-मिल जाते हैं। खून के साथ ही माँस पेशियों को चलाने वाले तंत्रिका-तंत्र (नसों से) में पहुँचकर वहाँ की कोशिकाओं को मिटाने लगते हैं। माँस-पेशियों को नियंत्रित करने वाली नसें जब खराब हो जाती हैं तब माँस-पेशियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं।

लक्षण

इस रोग की कई अवस्थाएँ हैं। कीटाणु शरीर में प्रवेश कर खूब संख्या वृद्धि करना-रोग की पहली अवस्था है। माँस पेशियों पर नियंत्रण रखनेवाले तंत्रिका-तंत्र की कोशिका को नष्ट करने लगना

दूसरी अवस्था है। अंत में माँस पेशियों का निष्क्रिय हो जाना तीसरी अवस्था है।

यदि ये कीटाणु गले में लग गए तो सर्व प्रथम खूब जोरों का जुकाम हो जायेगा। फिर सिर में दर्द, गरदन में मोच का-सा अनुभव, बच्चों के हाथ-पैर खिच जाना आदि होने की संभावना है। यह दूसरी अवस्था है। अंत में फेफडे, माँस-पेशियां आदि थक जाती हैं तो गले और मुँह में स्थित मांस-पेशियां ढीली पड जाती हैं। इसके कारण गरदन सीधी न रहकर, ढीली पडकर लटक जाती है। वह बच्चा या व्यक्ति तनकर नहीं खडा रह सकता।

जब आंतों में कीटाणु संख्या-वृद्धि करते हैं तब पहले पतली टट्टियाँ होने लगती हैं। फिर जब ये कीटाणु अच्छी तरह खून में मिल जाते हैं तब बुखार आना शुरु होता है। अंत में हाथ-पैरे-पीठ आदि भागों की माँस-पेशियों ढीली पडने लगती हैं।

ये कीटाणु एक साल से दो साल तक के उम्रवाले बच्चों को बहुत जल्दी सताने लगते हैं। इसीलिए इस रोग को शिशु पक्षाघात कहा जाता है। इस व्याधि में एक आश्चर्य की बात निहित है। अस्वच्छ वातावरण में, झोंपडियों में पलनेवाले बच्चों को यह अपना शिकार नहीं बनाता है। पर शहर तथा शहर के आसपास रहनेवाले बच्चे ही अधिकतर इस रोग से पीडित हो जाते हैं.

अस्वच्छ वातावरण में पलनेवाले बच्चों के भोजन के साथ जब-तब शिशु पक्षाघात उत्पन्न करनेवाले कीटाणु उनकी आंतों में पहुँचते रहते हैं। उस समय उनके शरीर में रहनेवाले निरोधक तत्व उन कीटाणुओं से लडकर उन्हें नष्ट कर डालते हैं। फिर जब भी वे शरीर में प्रवेश कर जमना चाहते हैं तब शरीर का रोग-निरोधक तत्व सबल होने के कारण ये मार दिए जाते हैं। यही कारण है कि अस्वच्छ वातावरण में पलनेवाले बच्चों को यह बीमारी नहीं लगने पाती है।

उसी समय शुद्ध और स्वच्छ वातावरण में बढ़नेवाले बच्चों की आँतों मों शिशु पक्षाघात के कीटाणु नहीं पहुँच पाते हैं। नही इसकी कोई संभावना है। इसलिए जब ये कीटाणु उन बच्चों पर आक्रमण करते हैं तब रोग - बिरोधी तत्व न होने के कारण रोग का शिकार उन्हें बनना ही पडता है।

जब ये कीटाणु शरीर पर असर करने लगते हैं तब प्रथम अडतालीस घंटों में यह रोग बडी तीव्रता से फैलता है. फिर दो या तीन दिन इसका असर धीरे - धीरे होता है। जब माँस - फेशियाँ ढ़ीली पडने लगती हैं, उसके एक सप्ताह के बाद रोग जड पकड़ लेता है। वह अच्छी तरह जम जाता है। जो माँस–पेशियाँ ढ़ीली पड़नेवाली होती हैं वे खूब दर्द करने लगती हैं। फिर उनमें सिकुडन जैसी लगती है। उस जगह पर हाथ लगाकर दबाने से बेहद, सख्त पीड़ा होती है। उसके दो–तीन दिन में वे माँस–पेशियाँ लटक जातीं हैं।

गरदन की नसों की कोशिकाएँ ढ़ीली पड़ जाती हैं। फेफड़ों पर नियंत्रण रखनेवाली नसों कीं कोशिकाएँ, माँस-पेशियाँ शिथिल पड़ जाती हैं। इसके अलावा निगलने का कामकरनेवाली माँस पेशियाँ ठीक-ठीक काम नहीं कर पाती हैं। मुँह से फेफडों में खाना जाने की सम्भावना इससे उत्पन्न होती है। साँस की नली में खाना जाने के कारण उसमें रूकावट उत्पन्न हो सकती है। इससे फेफड़ों की कोशिकाएँ मिटकर फेफड़े बेकार भी हो सकते हैं।

रोग-रोक के उपाय

इस बीमारी के कारण टाँगें दुबली हो जाती हैं। जिन्दगी भर लंगड़ाकर चलने की नौबत भी आ सकती है। लेकिन इस रोग को रोका जा सकता है।

इन कीटाणुओं के तीन प्रकार हैं। इन तीनों प्रकार के कीटाणुओं

के उन्मूलन के लिए अलग-अलग दवा है । एक प्रकार के कीटाणुओं को मिटाने के लिए दी जाने वाली दवा दूसरे प्रकार के कीटाणुओं के विरुद्ध काम नहीं कर सकती है । इसलिए तीनो प्रकार की दवाओं को मिलाकर देना चाहिए ।

इन कीटाणुओं के उन्मूलन के लिए निम्नलिखित ढंग से दवाएँ बनाई जाती हैं ।

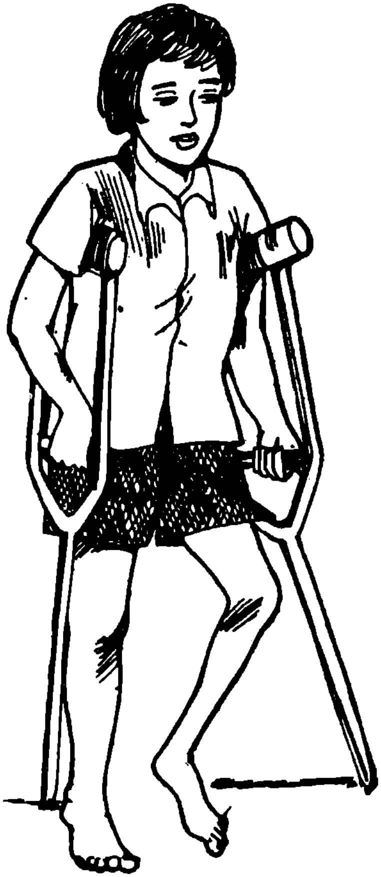

इन कीटाणुओं को पारमलिन नामक दवा से मारकर उस दवा को सूई के ज़रिए शरीर में प्रविष्ट कराते हैं । शरीर में इन कीटाणुओं से लड़ने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है । शिशु के एक साल की उम्र पूरी होने के पहले ही तीन सूइयाँ लगवा देनी चाहिए। दूसरे साल एक और सूई दी जानी चाहिए। इन सूइयों की दवा से यह बीमारी पास तक पटकने की कोशिश नहीं करती है । वैसे हो भी जाय तो बीमार व्यक्ति को अपाहिज होने का डर नहीं रहता ।

आजकल एक प्रकार की दवा तैयार की गई है इससे बचने के लिए । इसकी कुछ बूँदें बच्चों के मुँह में डाली जाती हैं । आसानी से बच्चे इन बूँदों को पी जाते हैं । कीटाणुओं को मारे बिना, रोग-निरोध की शक्ति को बढ़ाते हुए, रोग की तीव्रता को कुचलते हुए दव

ये की बूँदे बनाई जाती हैं। इस दवा की बूँदे शिशु के एक साल का उम्र में तीन बार दी जाती हैं। फिर दो–तीन साल के बीच एक बार और तीन-चार साल के बीच एक बार दी जानी चाहिए। एक साल की उम्र में तीन बार देकर फिर एक साल के बाद दवा दी नहीं गई तो उस दवा का ठीक असर नहीं पड़ेगा। इस दवा को गर्म जगह पर नहीं रखना चाहिए। इस लिए इसे फ्रिज में रखा जाता है। जब वह बच्चों को देनी होती है तब वह बाहर निकाली जाती है। तभी यह दवा असर करेगी। आजकल सभी अस्पतालों में मुफ्त में यह दवा बच्चों को दी जाती है। सूई के द्वारा जो दवा पहले दी जाती रही उससे अब जो बूँदें दी जाती हैं वे तीव्र और जबरदस्त शक्तिवाली हैं। इस दवा का असर सूई के ज़रिए दी जानेवाली दवा के असर से बढ़कर है और वह कई सालों तक शरीर में मौजूद रहती है।

६४. पीलिया

इस बीमारी में खासकर पित्ताशय खराब हो जाता है। प्रौढ़ लालरक्त कोशिकाओं को मिटाकर उनमें निहित लौंह तत्व को लेकर नई लालरक्त कोशिकाओं को बनाने का काम पित्ताशय करता है। इस प्रकार लाल रुधिर कोशिकाओं को मिटाते समय 'बिलिरबिन' नामक वस्तु का उद्‌भव होता है। उसे पित्तशय 'पित्त' में बदल देता है जिसे 'बैल' कहते हैं। इस प्रकार उत्पन्न पित्त द्रव एक नलिका के द्वारा आमाशय में पहुँचकर वहाँ भोजन में निहित चर्बी को पचाने का काम करता है। यह पित्त खून में भी ज़रा—सा मिल जाता है। वृक्क (गुर्दे) जब खून को साफ़ करते हैं तब पिशाब के साथ यह पित्त भी बाहर निकाल दिया जाता है। पिशाब में जो हल्का पीला रंग होता है वह पित्त के कारण ही होता है। कई कारणों से पित्ताशय में उत्पन्न होनेवाले पित्त की मात्रा अधिक होकर खून के साथ खूब मिल जाने से पीलिया रोग हो जाता है।

---

१. पित्त - BILE

खून में पित्त के अधिक मिलने के तीन कारण बतायेजा सकते हैं। जैसे—

१. पित्ताशय में रक्त कोशिकाओं की संख्या अधिक होने के पहले ही नष्ट हो जाती हैं। इसे खून मिटाने वाली पीलिया कहते हैं।

२. पित्ताशय को कीटाणु जब खराब कर देते हैं तब पीलिया हो जाती है। शराब आदि मादक वस्तुओं को अधिक पीने से पित्ताशय अपने पास आने वाली चीजों को पित्त में नहीं बदल पाता। इस हालत में जो पीलिया हो जाती है उसे 'पित्त पीलिया' या 'वैरस पीलिया' कहते हैं।

३. पित्ताशय में कंकड के समान कठोर पदार्थ उत्पन्न हो जाता है। पित्त नलिका द्वारा पित्त बाहर निकलकर आमाशय में पहुँचता है। पर यह कठोर पदार्थ उस नलिका को बन्द कर डालता हैं। इस कारण पित्ताशय से पित्त सीधे खून के साथ मिल जाता है। इस प्रकार जो पीलिया हो जाती है उसे 'बन्द पीलिया' कहते हैं।

लक्षण

चाहे किसी प्रकार की पीलिया हो, बुखार अवश्य चढ़ेगा। जिस पीलिया में खून नष्ट होने लगता है उस पीलिया के समय पिशाब में पित्त का मिश्रण नहीं होता है। इस कारण पेशाब का रंग पीला नहीं होगा। लेकिन मल (टट्टी) बहुत पीला रहेगा। दूसरी और तीसरी प्रकार की पीलिया में (पित्ताशय पीलिया और बन्द पीलिया) पेशाब का रंग एकदम पीला रहेगा, पर मल का रंग फीका रहेगा।

पहले साधारण तौर पर बुखार - सा चढ़ेगा। एक-दो दिनों के बाद मितली–सी लगेगी फिर उल्टियाँ शुरू हो जाएँगी। भोजन देखते हीजी घबराने लगेगा। खाना अच्छा नहीं लगेगा। आँखों में काली

पुतलियों के पास वाला सफेद भाग पीला होता चला जाएगा । आँखें जैसे ही पीली पड़ने लगेंगी वैसे ही शरीर से अधिक पसीना छूटना शुरू हो जायगा । बनियायिन और कुरता काँख के पास पीला हो जायगा । गोरे लोगों को जब पीलिया–रोग हो जाता है तब उन्हें देखने से लगता हैं कि वे हल्दी लगा कर नहाये हैं । एक दम शरीर पीला पड़ जाएगा । नाखून भी पीले पड़ जाएँगे । ज्यादा शराब पीनेवालों का पित्ताशय खराब हो जाता है । इस हालत में पीलिया होने से पित्ताशाय खून से विषैले पदार्थ अलग नहीं कर पाता है । इस कारण ये विषैले पदार्थ जब खून के साथ मिल जायेंगे तो मिरगी के समान हाथ पैर खिचने लगेंगे । कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती है ।

रोग का फैलना

जिस प्रकार हैजा और तपेदिक के कीटाणु मल के साथ बीमार व्यक्ति के शरीर से बाहर निकलते हैं उसी प्रकार पीलिया के कीटाणु भी मल के साथ रोगी के शरीर से बाहर निकलते हैं । इनके मल पर मक्खियाँ बैठकर अपते साथ कीटाणुओं को ले आती हैं । फिर हमारे घरों में खाने-पीने की चीजें यदि खुली पड़ी हों तो उन पर बैठकर कीटाणुओं को छोड़ देती हैं । उन खाद्य — पेय पदार्थों को ग्रहण करनेवालों के शरीर में कीटाणु प्रवेशकर रोग फैलाने का काम करते हैं । पीलिया रोग से पीड़ित व्यक्ति को मल-विसर्जन के बाद अच्छी तरह हाथ धो लेना चाहिए । उँगलियों के नाखून बिल्कुल साफ़ होने चाहिए । अच्छी तरह साबुन से साफ किए बिना रोगी भोजन-पानी को हाथ लगाएँ तो रोग के कोटाणु उन चीजों से होकर जल्दी फैल जाएँगे । अतः सफ़ाई हों तो समझ लीजिए आधी बीमारी दूर हो गई ।

चिकित्सा - विधियाँ

कुछ बीमारियों को मिटाने के लिए खास दवाई है, पर पीलिया के लिए ऐसी कोई दवा अभी तक बनी नहीं है । इसलिए बीमार व्यक्ति को कम से कम पन्द्रह दिन तक आराम करना चाहिए ।

जिन्हें शराब पीने की आदत है, उन्हें पीलिया रोग के समय शराब को हाथ तक नहीं लगाना चाहिए। इस रोग के समय भी वे पिएँगे तो अवश्य मरेंगे।

पहले अर्थात् प्रारंभिक स्थिति में मट्ठा, फलों का रस, नारियल का पानी आदि में ग्लूकोस मिलाकर मरीज को पीने के लिए देना चाहिए। मरीज को मतली - सी लगेगी। अत: पीने के लिए जो भी दिया जाता है थोड़ा - थोड़ा करके थोड़ी-थोड़ी देर के बाद देना चाहिए। एक साथ नहीं दें तो उल्टी नहीं होगी। खटाई और नमक, खाने में बहुत कम मात्रा में मिला सकते हैं। पित्ताशय सिकुड़कर महोदर आदि रोग हो गए हो तो नमक नहीं मिलाना चाहिए बाहर कहीं कुछ पीना नहीं चाहिए, पानी तक। घर में भी अच्छीं तरह उबालकर ठंडा होने के बाद पानी पीना चाहिए। बाहर जाने पर बहुत प्यास लगे तो नारियल का पानी पीना अच्छा है। जब अच्छी तरह भूख लगे तब बिना तेल, मिर्च-मसाले के सादा खाना देना चाहिए। पर खाना अवश्य पौष्टिक हो-इसका ध्यान रखना ज़रूरी है। एक साथ खाना न देकर थोड़ा—थोड़ा करके देना चाहिए।

इस प्रकार सावधानी से पथ्य का ध्यान रखने पर पीलिया पर नियंत्रण पाना आसान हो जाता है। सादा खाना और सरल जीवन से पीलिया से दूर रह सकते हैं।

६५. अन्य कारणों से लगनेवाले संक्रामक रोग

अन्य प्रकार के कीटाणु घाव, चोट आदि के द्वारा शरीर में प्रवेश कर जाते है। ये कीटाणु जब तक उपयुक्त वातावरण नहीं पाते हैं तब तक सूखे बीजों के समान पड़े रहते हैं। ऐसे कीटाणु घाव या चोट को पाकर उसमें चिपक कर फिर ताजे हो जाते हैं।

ये हमारी आँतों में घुसकर संख्या बढ़ाते रहते हैं। गाय,बकरी, घोड़ा आदि जानवरों की आँतों में पनपना उन्हें बहुत अच्छा लगता है।

जब तक ये आँतों में रहते हैं तब तक इनसे किसी प्रकार की हानि नहीं होती है। पर जब रक्त प्रवाह के साथ मिल जाते हैं तब इनके विष का असर पड़ना शुरू हो जाता है। ये कीटाणु मनुष्य की आँतों से मल के साथ बाहर निकलते हैं और जानकारों की आँतों से लीद के साथ बाहर आते हैं। मिट्टी में ये सूखते रहेंगे, पर जिन्दे रहेंगे। उपयुक्त घाव या चोट इन्हें मिले तो वहाँ पर अण्डे देकर परिवार बढ़ाते हैं। फिर खून के प्रवाह के साथ यात्रा कर, उसी को अपना भोजन बनाकर बहुत जल्दी संख्या बढा लेते हैं।

जब इन कीटाणुओं की संख्या काफी मात्रा में बढ़ जाती है तब इनके द्वारा विसर्जित जहर खून में मिलकर शरीर भर में फैलने लगता है। यह जहर खास तौर पर तंत्रिका-तंत्र पर असर करता है। जहाँ-जहाँ ये आक्रमण करते हैं वहाँ दर्द होना शुरू हो जाता है। शरीर भर की नसों में मुँह को हिलानेवाली नसें बहुत छोटी हैं और तंग भी। इसकारण ये नसें पहले खराब हो जाती हैं। मुँह, का हिलला बन्द हो जाता है। इस रोग को 'मुँह बंद रोग' कहा जाता है। यह जहर जब अन्य भागों में पहुँचकर नसों पर आक्रमण करता है तब शरीर रोग-ग्रस्त हो जाता है अर्थात् मिरगी के समान हाथ पैर खिंच जाते है।

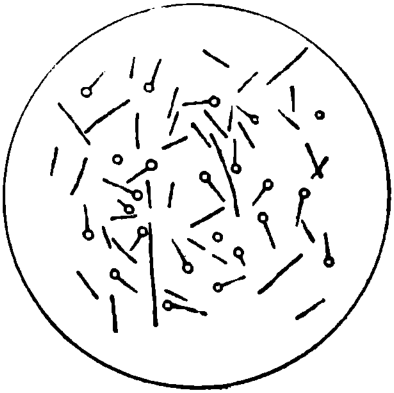

रोग के फैलने के तरीके

लोगों के मल में, खासकर जानवरों की लीद में ये कीटाणु अधिक पाये जाते हैं। जब मल या लीद सूख जाते हैं तब ये कीटाणु भी सूखे हुए बीज के समान पड़े रहते हैं। गाँवों में खाद के गड्ढ़ों में ये सूखे बीज या कृमियों के रूप में वास करते हैं। चलते समय

कहीं लोहे का काँटा त्वचा में चुभ जाय या चीर दे तो चोट लग जाती है। उस चोट में मिट्टी, मल या लीद के साथ पड़े हुए ये कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं। खून के साथ मिलकर असंख्य रूप से बढ़ने लगते हैं। नवजात शिशु के नाभिच्छेदन (नाल काटते वक्त) के समय अस्वच्छ चाकू का प्रयोग नहीं करना चाहिए। यदि ऐसा किया गया तो चाकू में लगी धूल के साथ कीटाणु शिशु के शरीर में प्रविष्ट हो जाएँगे। जब बच्चे इधर-उधर दौड़कर खेलने लगते हैं तब अक्सर नीचे गिरते हैं। उन्हें चोट लगती है। उस समय भूमि पर पड़े रहने वाले कीटाणु घाव से होकर शरीर में घुस जाते हैं। फिर धडा धड़ संख्या बढ़ाकर रोग के कारण बनते है और बच्चे बीमार पड़ जाते हैं।

लक्षण

मुँह न खोल पाना, सिर घुमा न सकना (गरदन मोच खा जाना) मुँह की माँस-पेशियाँ सिकुड़कर तनाव उत्पन्न होना, शरीर झुक जना आदि विकार इस तरह के कीटाणुओं के कारण ही उत्पन्न होते हैं। जब बीमारी प्रौढ़ावस्था पर पहुँच जाती है तब इन रोगों में भी वृद्धि होने लगती है।

जब हमें शक हो जाता है कि यह 'मुँह बंद बात' है तब तुरंत उस मरीज़ को अस्पताल पहुंचा देना चाहिए। वहाँ इस रोग को दूर करने के लिए सूई लगाते हैं। इस रोग का उचित इलाज वहीं हो सकता है।

निरोधक-तरीके (निवारण)

बचपन में ही त्रिरोग-निरोधक सूई लगवा देनी चाहिए। इसमें ऐसे रोग को रोकने वाली दवा भी मिली हुई होती है। जब बच्चा तीन महीने का होता है तब पहली बार सूई दी जानी चाहिए। एक महीने के बाद अर्थात् जब शिशु चार महीने का होता है तब एक सूई लगवाई जाती है, फिर जब बच्चा पाँच महीने की उम्र का होता है

तब तीसरी सूई लगवाई जाती है। इसके बाद बच्चा पहले पहल जब पाठशाला में प्रवेश करता है तब भी एक सूई दी जानी चाहिए। फिर वह जब-जब गिरता है उसे चोट लगती है तब तब उसके लिए निर्धारित सूई की दवा शरीर में प्रवेश कर जाती है तो कोई ऐसा खतरा नहीं होगा।

खासकर जब सड़क को धूल में खेलते समय गिर कर चीट लगे तब, खेत में काम करते समय कोई चोट लगे तब, खाद देते समय कहीं घाव लगे तब, यह रोग-निरोधक सूई अनिवार्य रूप से लगवा लेनी चाहिए।

६६. सम्भोग से उत्पन्न रोग या 'रतिज रोग'

ये बीमारीयाँ कई तरह की हैं। उसमें खास है 'सिपिलिस'[1] इसे मधुमेह भी कहते हैं 'कोनोरिया' भी इसी तरह की एक बीमारी है। अक्सर इस रोग से स्त्री पुरुष के शिश्न पर दाने निकल आते है और घाव हो जाता है।

लक्षण

इस सिपिलिस रोग की तींन अवस्थाएँ हैं। छूत लगते ही दो-तीन सप्ताह में जहां बीमारी लगती है वहाँ पर अर्थात् जननांग (शिश्न) में घाव–सा प्रतीत होने लगता है। इसके दो-तीन महीनों के बाद मुँह, गला, त्वचा आदि पर फूंसी के समान कुछ धाव उत्पन्न होते हैं। खुजली भी शुरू हो जाती हैं। ग्रथियां सूज जाती हैं। और दो-तीन साल होने पर यह बीमारी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। हृदय, दिमाग आदि की स्नायु खराब हो जाती हैं।

सिपिलिस शरीर के सारे अंगों को खराब कर देता है। यह एक भयानक संक्रामक रोग है। त्वचा, मस्तिष्क स्नायु, मुंह, आसन द्वार, शिश्न आदि पर घाव होने लगते ते हैं। पित्ताशय

सिपिलिस SYPHILIS (A dreadful venercal disease)

और हड्डियों पर भी इस बीमारी का असर पड़ता है। हृदय, मस्तिष्क आदि की स्नायु ठीक – ठीक काम करने से इन्कार कर देती हैं।

इलाज

आज कल इन बीमारियों को स्वस्थ करने के लिए दवाएँ बना ली गई हैं। जब भी उपर्युक्त बीमारी के लक्षण दिखाई पड़े तब तुरत डॉक्टर के पास जाना चाहिए। तुरंत इलाज करने से अवश्य फायदा होग।। यदि बीमारी जड़ पकड़ ले तो फिर स्वस्थ होने में बहुत कठिनाई होती है। इस बीमारी के लक्षण दिखाई पड़ने पर भी कुछ लोग लज्जा के कारण डॉक्टर के पास नहीं जाते हैं। जैसे – जैसे समय बीतता जाता है वैसे – वैसे इस बीमारी के कीटाणु संख्या में बढते जाते हैं, खून के साथ मिलते जाते हैं। जब शरीर भर में ये कीटाणु व्याप्त हो जाते हैं तब इसका निवारण असंभव हो जाता है।

गोनोरिया

इस बीमारी मे सिपिलिस के समान घाव नही उत्पन्न होते लेकिन जैसे ही ये कीटाणु स्त्री या पुरुष के मर्मांग में पवेश करते है, संभोग के चौबीस घटों के बाद ही पेशाब करते समय जलन का अनुभव होगा और पीब भी निकलेगा।

ऐसे संभोग से लगे छूत के रोगों में स्त्री – पुरुष के मर्मांग पर घाव उत्पन्न होना और इन अंगों से संबंधित लसीका ग्रंथियों पर कीटाणुओं के आक्रमण होने से जाँध आदि भाग पर फुंसी होना स्वाभाविक है। शिश्न कभी–कभी फूल जाता है। मर्मांग पर छोटे-छोटे दाने निकल आते हैं।

सिपिलिस की छूत लगने के दो-तीन सप्ताह में शिश्न के अग्र

लसीका ग्रंथि — LYMPHETIC GLAND

भाग में सूजन या घाव-सा दिखाई पडेगा। वहाँ कीटाणु संख्या वृद्धि करते हैं। उस घाव से निकलकर कीटाणु खून के साथ घुल-मिल जाते हैं। फिर शरीर पर रोग का असर पूरा—पूरा पड़ने लगता है।

स्त्रियों को भी यह रोग लग जाता है। पर पुरुषों के समान बाहर दिखाई नहीं देता। क्योंकि स्त्रियों के जननांग के अन्दर के भाग में घाव उत्पन्न होते हैं। ऊपरी त्वचा पर इस रोग के कोई चिह्न दिखते नहीं। धीरे-धीरे यह छूत गर्भाशय की नली और गर्भाशय में फैल जाती है। फिर उन भागों में भी घाव उत्पन्न होते हैं।

यह रोग केवल स्त्री-पुरुष संभोग से ही नहीं, चूमने से भी फैल जाता है। जिस स्त्री के शरीर में यह रोग बुरी तरह जम गया है उसका मुँह चूमने से थूक के द्वारा ये कीटाणु फैल जाते हैं। जिन्हें यह रोग लग गया है उन लोगों के कपडों को बिना धोए कोई पहन ले तो पहननेवाले को छूत लग जाती है।

यह बीमारी गर्भस्थ शिशु पर असर नहीं करती है। लेकिन जिस गर्भाशय की नली में रोग के कीटाणु अधिक संख्या में होंगे उस गर्भाशय से पैदा होनेवाले शिशु के लालट, आँखें, और अन्य भागों पर अवश्य लगे रहेंगे ये कीटाणु। इसके कारण बच्चे की आँखें लाल होंगी या आँख आई होगी। अतः पैदा होते ही बच्चे की आँखों को अच्छी तरह पोंछना चाहिये। नहीं तो दवा डालकर आँखों को स्वस्थ करना होगा।

६८. कुष्ठ रोग या कोढ़

कुष्ठ रोग के कीटाणु भी क्षय रोग के कीटाणुओं के समान छोटे तिनकों जैसे लंबे होते हैं। क्षय रोग के कीटाणु अलग-अलग रहते हैं पर कुष्ठ रोग के कीटाणु ढ़ेर के ढ़ेर मिलकर बीड़ी-गट्ठर के

समान दिखाई देते हैं। क्षय के कीटाणु बहुत जल्दी फैलकर असर कर डालते हैं पर कुष्ठ के कीटाणु शरीर में पहुँचकर काफी समय के बाद असर करने लगते हैं। इसलिए रोग के लक्षण भी धीरे-धीरे ही उभरते हैं।

प्रारंभिक अवस्था

दस्त, हैजा आदि रोग के कीटाणु शरीर में प्रवेश करने के कुछ घंटे बाद ही रोग उभर आता है। पर कुष्ठरोग के कीटाणु शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं तो रोग उत्पन्न करने में कुछ महीने या कभी-कभी कुछ साल भी लगा देते हैं। लक्षण भी धीरे-धीरे ही दिखते हैं।

रोग फैलने के तरीके

त्वचा में कुष्ठ रोग के कीटाणु चिपक जाते हैं। फिर वहाँ की श्वेत रुधिर कोशिकाओं में घुस जाते हैं। उन कोशिकाओं के जरिए त्वचा के अधोभाग तक पहुँच जाते हैं। कुष्ठ रोग के कीटाणु जिन श्वेत रुधिर कोशिकाओं में प्रविष्ठ होते हैं उनमें ही परिवार—वृद्धि करने लग जाते हैं। बाद में चर्म के नीचे स्थित स्नायुओं पर आक्रमण करते हैं। कभी-कभी त्वचा पर दाग और नसों की खराबी तक ही यह रोग सीमित रह जाता है। जिस शरीर में रोग-रोक की शक्ति है उस शरीर पर कुष्ठ का इससे अधिक असर नहीं होता है। जब कही-कहीं चमड़ी पर दाग और नसों में खराबी हो तब अविलम्ब डॉक्टर के पास जाना चाहिये। प्रारंभिक अवस्था में ही इसे रोका जाय तो पूर्ण रूप से स्वास्थ्य लाभ हो सकता हैं। दूसरों को भी छूत लगने की संभावना इस स्थिति में नहीं रहती है।

मान लीजिए शरीर में रोग-निरोध की शक्ति क्षीण हो तो कुष्ठ रोग के कीटाणु त्वचा के द्वारा रक्त के प्रवाह में मिलकर सारे शरीर में फैल जाते हैं। खास तौर पर यह रोग पुरुषों के अण्डकोश और गर्भाशय को बरबाद कर डालता है।

संक्रामक कोढ़

जिस व्यक्ति को संक्रामक कोढ़ की बीमारी है उसकी त्वचा से उसके पसीने के द्वारा कुष्ठरोग के कीटाणु बाहर निकलते हैं। सदा मरीज की त्वचा पर ये कीटणु चिपके रहते है। इसलिए जब ऐसे कुष्ठ रोगी लगातार किसी बच्चे को गोद में लिए रहते हैं तो उस बच्चे को कुष्ठरोग लगने की संभावना है। ऐसे रोगी जो कपड़े पहनते है उनमें उनका पसीना लगा होता हैं। पसीने में अवश्य रोग के कीटाणु होते हैं। यदि उन कपड़ों को अन्य लोग पहन लें तो उन्हें निस्सन्देह यह रोग लग जाएगा। पर एक-दो बार इन रोगियों के सम्पर्क में आने मात्र से छूत नहीं लगेगी। बच्चों की देखभाल के लिए नियुक्त करते समय नौकर के बारे में हमें निश्चित-जानकारी प्राप्त करनी चाहिए कि उसे कुष्ठ रोग है या नहीं। बच्चों को कुष्ठ रोगियों से दूर रखना अच्छा है। मरीज के जिस अंग में कुष्ठ रोग लगा है उस अंग की त्वचा से रगड़ खाते रहने पर दूसरों के शरीर के उस अंग में कुष्ठ रोग के कीटाणु चिपक जाते हैं फिर त्वचा पर, स्नायु पर उन कीटाणुओं का अर्थात् रोग का असर हो जाता है।

इसके अलावा मच्छर और खटमल कुष्ठ रोगी को काटने के बाद दूसरे स्वस्थ लोगों को काटें तो स्वस्थ लोग भी कोढ़ का शिकार हो जाते हैं। अर्थात् किसी घर में एक व्यक्ति को कोढ़ की बीमारी हो जाय तो उसे मच्छर और खटमल (यदि हों तो) अवश्य काटेंगे। उस घर के अन्य लोगों को भी वेही मच्छर और खटमल काटेंगे। प्रति दिन यदि यही होता रहा तो स्वस्थ लोग भी एक दिन कुष्ठ रोगी बन जाएँगे।

जिन्हें संक्रामक कुष्ठ रोग लगा है उनकी नाक और उनके गले में घाव हो सकता है। उस घाव में कुष्ठ रोग के कीटाणु अंत्यधिक संख्या में रहते हैं। ऐसे रोगी यदि नाक छिनक दे तो उसके द्वारा निकले बलगम में, बाहर छोड़ने वाली सांस में, रोगी की थूक में

असंख्य कीटाणु भरे रहते हैं। यदि किसी स्वस्थ आदमी की त्वचा कट जाय या चोट लगे तो कुष्ठ रोगी की थूक, बलगम, लार आदि से चोट को दूर रखना चाहिए। नहीं तो उस चोट में कीटाणु चिपक जाएँगे। इसके अलावा जिन कुष्ठ रोगियों के शरीर पर कोढ़ के घाव हैं उन पर मक्खियाँ अवश्य भिन भिनायेंगी। घाव से मक्खियों के शरीर पर कोढ़ के कीटाणु अच्छी तरह लग जाएँगे। फिर वे ही मक्खियाँ स्वस्थ मनुष्य के शरीर में लगी चोट पर आकर बैठेंगी तो कोढ़ के कीटाणु उनके शरीर से निकल कर स्वस्थ मनुष्य की चोट में चिपक कर उसकी त्वचा पर असर करने लगेंगे।

कोढ़ का दो प्रकार में वर्गीकरण कर सकते हैं। १. संक्रामक कोढ़ २, साधारण कोढ़।

जिन्हें साधारण कोढ़ की बीमारी है उनके शरीर में ये कीटाणु अधिक संख्या में नहीं पाए जाते हैं, क्योंकि उनके शरीर में रोग - निरोध की शक्ति अधिक है। इसलिए कोढ़ के कीटाणु त्वचा के नीचे पहुँच नहीं पाते हैं, वहीं रोक दिए जाते हैं। और किसी भाग को इन कीटाणुओं से हानि नहीं पहुँचती है। त्वचा पर जगह - जगह पर दाग उत्पन्न होते हैं। वे उभरे नहीं होंगे, पर इनके किनारे अच्छी तरह दिखाई देंगे। त्वचा के बाकी भागों से इस दाग का रंग फीका रहेगा। इन दागों पर यदि सूई लेकर कोंचेंगे तो भी कुछ पता नहीं चलेगा। वह भाग संवेदनहीन अर्थात् स्पर्श - ज्ञान - हीन हो जाएगा।

संक्रामक कोढ जिसे लग जाता है उसके शरीर में अधिक संख्या में कीटाणु पाए जाते हैं। उस मनुष्य के शरीर में रोग - निरोध - शक्ति कम होने के कारण कीटाणु त्वचा के नीचे जाकर खून की नलियों में पहुँचकर पूरे शरीर में फैल जाते हैं।

इस संक्रामक कोढ़ में त्वचा पर दाग ही नहीं शरीर में जहाँ-तहाँ फोड़े, घाव आदि भी उत्पन्न हो जाते हैं। यही नहीं स्नायुओं

को अस्त-व्यस्त करने का काम धीरे-धीरे सम्पन्न होता है। इससे उँगलियों को अपनी इच्छा के, आवश्यकता के अनुसार सिकोड़ या फैला नहीं पाएगा कोढ़ी व्यक्ति। हमेशा के लिए उंगलियाँ सिकुड़ जाएँगी। यह रोग मनुष्य को फिर भी नहीं छोड़ता। उसकी आँखें अपना असली रूप खो देती हैं। नाक का आकार बिगड़ जाता है। तीखी नाक चपटी बन जाती है। इन सब परिवर्तनों के कारण ही कोढ़ी घृणित लगता है।

ऐसे कोढी जहाँ भी नाक छिनक दें उसमें कीटाणु अवश्य होते हैं। ये कहीं कफ थूक दें तो उसमें भी कीटाणुओं की भरभार रहेगी। उनके शरीर के घावों में तो इनकी ढेर की ढेर पाई जाती है। जिस बच्चे के शरीर में रोग-निरोध-शक्ति कम मात्रा में निहित है उस बच्चे को कोढ़ी के पास निरंतर नहीं रहने देना चाहिए। नहीं तो उस बच्चे की त्वचा में कोढ़ के कीटाणु चिपक जाएँगे और अन्दर उतरकर खून से मिलकर उसके विभिन्न अंगों को कुरूप कर देंगे।

चाहे संक्रामक कोढ़ हो, चाहे साधारण कोढ़, आरंभ में ही रोग को पहचान कर डॉक्टर की सलाह और उसके आदेश के अनुसार उचित दवाओं का ठीक समय पर सेवन करें तो रोग पूर्ण रूप से दूर हो जाएगा। डॉक्टर के पास जाने में हमें विलंब नहीं करना चाहिए।

एक खास सत्य का हमें ज्ञान होना चाहिए। संक्रामक कोढ़ के कीटाणु भी कुछ समय के बाद नष्ट हो सकते हैं। लेकिन ये रोग कुछ चिह्न छोड़ जाते हैं हमेशा के लिए। मुड़ी हुई उंगलियाँ कभी सीधी नहीं होतीं और घाव कभी भरते भी नहीं। इस बीमारी के कारण स्नायु मंडल के कुछ भाग निश्चेष्ट हो जाते है। इसलिए गर्मी का ज्ञान कोढ़ी के शरीर के कुछ अंग अनुभव नहीं कर पाएँगे। कहीं चोट लगे तो भी दर्द नहीं होगा कोढ़ियों को।

इस वजह से इनके हाथ-पैर में अक्सर चोट आती रहेंगी। दर्द न होने के कारण इधर-उधर कहीं इनके हाथ-पैर टकरा ही जाते हैं। पर इन चोटों में कोढ़ के कीटाणु नहीं रहेंगे। इनका रूप अवश्य विकृत हो जाएगा। रोग इनके द्वारा फैलेगा नहीं।

किसी भी व्यक्ति के शरीर में कहीं कोई दाग जैसी चीज़ दिखाईदे तो तुरंत डॉक्टर के पास जाना चाहिए। लापरवाही से छोड़ देंगे तो स्नायु खराब हो सकती हैं। तब सूई चुभोने पर भी दर्द का अनुभव न हो सकेगा। यहि उस हालत में भी डॉक्टर के पास जाएँ तो भी कुछ फायदा हो सकता है। आजकल बड़ी अच्छी दवाइयाँ बनाई गई हैं इस रोग से बचंने के लिए। जिस तरह यह रोग लगने में लंबा समय लगता है उसी तरह इस रोग के कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए भी काफ़ी समय अर्थात् कुछ साल भी कभी - कभी लग जाते हैं। तब तक दवा लेते रहना चाहिए। इस प्रकार हम सबको यह जानना जरूरी है कि कोढ़ की बीमारी पूर्ण रूप से स्वस्थ की जा सकती है। अतः हमें डरने की अवश्यकता नहीं हैं। बस शुरू में ही लक्षण देखकर इलाज शुरू कर देना चाहिए।

उपसंहार

'अंत में मैं आपको एक बात कहना चाहता हूं'—वैद्यजी ने कहा।

'चाहे किसी भी प्रकार के संक्रामक रोग के कीटाणु हमारे शरीर में प्रवेश कर जाँय, हमारा शरीर रोग-निरोध-शक्ति को तैयार कर देता है। पर रोग-निरोध शक्ति को उत्पन्न करने के लिए शरीर का सशक्त होना जरूरी है। शरीर को सशक्त रखने के लिए पुष्टिकर भोजन की आवश्यकता है। अगर हम नियमित रूप से पुष्टिकर भोजन खाते जाएँगे तो संक्रामक रोगों के कीटाणुओं का सामना कर हमारा शरीर विजय प्राप्त कर सकता है।

'पुष्टिकर भोजन' के नाम से कुछ लोग कीमती साग–सब्जी,

महंगी दवादयाँ आदि की कल्पना कर लेते हैं। वह ठीक नहीं है। अब देखिए साग किसी भी बगीचे में उगाया जा सकता है। वह एक पौष्टिक आहार है। इसमें कई ऐसे तत्व निहित हैं जिससे शरीर का बल बढ़ सकता है। साधारण केले, पपाया, आम, अमरूद आदि फल, गाजर आदि सब्जियाँ, मछली, गोश्त, अण्ड़े, दूध, दही, मट्ठा आदि चीजें रोज के भोजन में होनी चाहिए। इसके अलावा उचित शारीरिक श्रम और नींद को भी आवश्यक मात्रा में होना अत्यावश्यक है। बिना शारीरिक श्रम किए बार–बार खाते जाएँगे तो बीमार पड़ जाएँगे।

"अब किसन पुर को स्वस्थ जीवन देना आप लोगों के हाथ में है। चिर काल तक स्वस्थ जीवन जीकर आनंद से समय काटें। आपके लिए ईश्वर से प्रार्थना कर आशीर्वाद देता हूँ।" इतना कहकर कालूचंदजी हाथ जोड़कर अपने आसन पर बैठ गए।

गाँव के मुखिया चौधरी साहब ने अपना आभार व्यक्त किया वैद्यजी के प्रति। फिर अपने गाँव वालों से कहा–'मेरे प्रिय बंधुजन, हमारा गाँव धन-धान्य से भरपूर है। नीरोग और स्वस्थ जीवन भी मिलेगा तो 'सोने में सुगंध' के समान अद्भुत होगा। वैद्य कालूचंदजी ने स्वस्थ जीवन बिताने के सारे तरीके चित्रों के साथ समझा दिये हैं। उन्हें कभी भूलना नहीं चाहिए, उनके बताए हुए रास्ते पर चलकर स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त करने की प्रार्थना आप सबसे करता हूँ।'

इन शब्दों के साथ कालूजंदजी को चौधरी साहब ने माला पहनाई। गाँव के सारे लोग खड़े होकर ताली बजाने लगे। उन सबके चेहरों पट श्रद्धा की भावना छलक रही थी। सब खुशी-खुशी अपने अपने घरों की ओर वैद्यजी की चर्चा करते हुए चल पड़े।

लेखक की पुरस्कार प्राप्त रचनाएँ

केन्द्र सरकार का बाल-साहित्य पुरस्कार

१.	आकाशचारी बालक (भूगोल)	१९५९
२.	जादूगर का पुत्र (कीड़ों का जीवन)	१९६२
३.	प्राचीन जग का उड़नेवाला बालक	१९६४
४.	वनकन्या (वनस्पति विज्ञान)	१९७१

यूनेस्को प्रौढ़-शिक्षा-साहित्य-पुरस्कार

१.	मधुर शिशु (चीटी-मधुमक्खियों की कहानी)	१९६६
२.	आग, भाप, चुम्बक, बिजली और आकाशयान की कहानी	१९६७
३.	मार्गदर्शक गांधीजी	१९६८

केन्द्र सरकार का प्रौढ़ शिक्षा-साहित्य पुरस्कार

१.	चलो, चन्द्रतल	१९६६
२.	मायावी	१९६७
३.	संक्रामक रोग तथा उनका निवारण	१९८०
४.	कम खर्च में पौष्टिक आहार	१९८७

तमिलनाडु सरकार का बाल-साहित्य पुरस्कार

१.	पाताल लोकचारी बाल	१९८१

दक्षिण-भाषा बुक ट्रस्ट बाल-साहित्य पुरस्कार

१.	कितना बजा?	१९५८

संगीत-नाटक-एकादमी का एकांकी-पुरस्कार

१.	तीन सत्य	१९६९